खण्ड 3
ग्रहचार-भाग 2

खण्ड तीन का परिचय

MJY-007 संहिता-ज्योतिष का यह तृतीय खण्ड है। इस खण्ड के अध्ययन के उपरान्त आप संहिता-ज्योतिष ग्रन्थ में प्रतिपादित ग्रहों के संचरण से सुपरिचित हो सकेंगे।

ग्रहचार-भाग 2 नामक इस खण्ड में कुल पाँच इकाईयाँ हैं। इस खण्ड की पहली इकाई शनिचार से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत शनि-स्वरूप,अश्विनी नक्षत्र से रेवती नक्षत्र पर्यन्त शनि संचरण से जायमान शुभाशुभ फल, विविध वर्णगत शनि शनिचार का फल तथा मेषादि द्वादशराशि गत शनिचार के फलों का वर्णन किया गया है। जिसका विस्तृत अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

इस खण्ड की द्वितीय इकाई राहुचार से सम्बन्धित है। इस इकाई में विविध मतानुसार राहु का ग्रहत्व, राहुकृत ग्रहण का स्वरूप,पर्व भेद एवं उनके फल, ग्रस्तोदित और ग्रस्तास्त ग्रहण का फल तथा अयन और दिशा गत ग्रहण का फल, द्वादशराशिगत ग्रस्त चन्द्रार्क फल, ग्रास भेद तथा उनके फल, ग्रस्त भौमादि पाँच ग्रहों का फल, चैत्रादि द्वादशमासगत ग्रहण का फल और चन्द्रार्क मोक्ष प्रकार,भेद लक्षण एवं तत्फल के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की तृतीय इकाई केतुचार से सम्बन्धित है। इसमें केतु का स्वरूप लक्षण, शुभाशुभ केतु के लक्षण, विविध प्रकार के केतुओं की संख्या और उनके फल, विविध भेद से केतु का लक्षण तथा नक्षत्रगत केतु के लक्षण आदि विषयों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

इस खण्ड की चतुर्थ इकाई अगस्त्यचार से सम्बन्धित है। इस इकाई में अगस्त्यमुनि, समुद्र की शोभा, विन्ध्य शोभा, अगस्त्योदय प्रभाव,शरदृतु, भूमिशोभा और अगस्त्य की प्रधानता का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् अगस्त्योदय, अर्घदान, अर्घार्थ वस्तु, अर्घदान का फल तथा वर्णों के अनुसार अगस्त्य के फल का वर्णन विस्तार से किया गया है।पञ्चम इकाई सप्तर्षिचार से सम्बन्धित है। इसमें सप्तर्षि का दिक्संस्थान लक्षण, नक्षत्रनायन, नक्षत्रभोगकाल,संस्थान लक्षण और सप्तर्षि का स्ववर्ग और उनके फल आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

इकाई 1 शनिचार

इकाई की संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 शनिचार : संक्षिप्त परिचय

- 1.2.1 अश्विनी-भरणी नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.2 कृत्तिका-रोहिणी नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.3 मृगशिरा-आर्द्रा नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.4 पुनर्वसु-पुष्य नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.5 आश्लेषा-मघा नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.6 पूर्वाफाल्गुनी-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.7 हस्त नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.8 चित्रा-स्वाती नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.9 विशाखा-अनुराधा नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.10 ज्येष्ठा-मूल नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.11 पूर्वाषाढ़ा-उत्तराषाढ़ा नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.12 श्रवण-धनिष्ठा नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.13 शतभिषा-पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रगत शनि का फल
- 1.2.14 उत्तराभद्रपद-रेवती नक्षत्रगत शनि का फल

1.3 विविध वर्णगत शनिचार का फल कथन

1.4 द्वादशराशिगत शनिचार का फल विमर्श

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्द

1.7 बोध प्रश्न

1.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- संहितागत शनिचार के स्वरूप को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- नक्षत्रों में शनि संचरण के प्रभावों को रेखांकित करने में कुशल होंगे।
- द्वादशराशियों में शनि गमन के शुभाशुभ फल को प्रतिपादित करने में दक्ष हो सकेंगे।
- विभिन्न वर्णगत शनि के सामान्य फल को बता सकेंगे।
- मानव जीवन में शनि संचरण के प्रभावों का उल्लेख करने में समर्थ होंगे।

1.1 प्रस्तावना

सूर्यादि ग्रहों के विभिन्न राशियों,नक्षत्रों में संचरण के आधार पर समाज में होने वाले शुभाशुभफल का कथन संहिता ग्रन्थों का प्रतिपाद्य विषय है । प्रस्तुत इकाई शनिचार से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत शनि के विविध नक्षत्रों, राशियों तथा वर्णों के अनुसार गमन करने से विभिन्न देशों एवं स्थानों में होने वाले शुभाशुभ प्रभावों का वर्णन किया गया है । जिसका अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे । शनि के द्वारा व्याधि भय, प्रजाओं को कष्ट, राजाओं में कलह आदि की वृद्धि एवं अकाल आदि कब होंगे इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। कुछ- कुछ राशियों में शनि के भ्रमण करने से शुभ फलों की प्राप्ति तथा निम्न वर्ग की उन्नति का उल्लेख भी किया गया है। सम्प्रति इसकी उपयोगिता का अध्ययन भी आप इस इकाई में करेंगे।

1.2 शनिचार : संक्षिप्त परिचय

ग्रहचार का अर्थ है- ग्रहों का चलन। चर शब्द गत्यर्थक होता है। सौर मण्डल के सभी ग्रहों में शनि प्रसिद्धतम ग्रह है ।"शनै: शनै: चरतीति" इस व्युत्पत्ति के अनुसार शनि मंद गति से आकाश में अपनी कक्षा में भ्रमण करता है ।संस्कृत वाङ्मय में शनि के अनेक नाम प्राप्त होते हैं। यथा- सौरि, शनैश्चर, पङ्गु, मंद, छायासुत, अनिल, सूर्यसुत, असित, पीतांगी, काल,यम, असिताम्बर, तरणितनय, महिष वाहन, दास, क्रूर, नीलकाय इत्यादि ।पद्मपुराण के अनुसार इसकी उत्पत्ति भगवान् भास्कर और उनकी सुवर्णा छाया नामक पत्नी से हुई थी। वस्तुतः ये ग्रह क्रूर माने जाते हैं। सार्वभौमिक फल निर्धारण के क्रम में संहिता ग्रंथों के अनुसार इसके प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत अनार्त लोग, अर्बुद, पुष्कर क्षेत्र, मद्र देश, कोशल देश, काशी, पाञ्चाल देश, पारतर देश,सौराष्ट्र, पंजाब, गुहा, सिंधु के निकट, सौवीर, महाराष्ट्र, तक्षशिला, कुरु प्रदेश, चीन, गान्धार, शूलिक, पारत देश, मगध देश, कुलूत क्षेत्र, त्रिगर्त, नेपाल, काश्मीर, मिथिला, गिरिव्रज, पुंड्र, ताम्रलिप्ति, यवन, उज्जैन, कुंतिभोज देश, विदिशा आदि देशों में निवास करने वाले लोग तथा कवि, वैद्य, मंत्री, नृतक, वादक, निषाद, दुर्जन, मलिन,तेली, कर्मकार, सेनापति, रजक, चोर,किरात, वणिक्, धूर्त, पुष्प, वैश्य, राजा, गुड, नमक, भिक्षुक, जल, नाई, शिल्पी, वेश्या, मालाकार, गुप्तचर, दूत, सारथी, नाविक, कुङ्कुम, लाख, धान्य, कुसुम के पुष्प, मंजीठ, फल, औषधि, योद्धा,प्रधान ब्राह्मण, पुरोहित, नीतिज्ञ, स्त्री, वृद्ध, शबर जाति, सुवर्ण, दरिद्र आदि शनि के प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय ये छ: प्रकार के रस एवं सर्प, महिष, गर्दभ, उष्ट्र, चणक, घोड़ा आदि भी प्रभाव क्षेत्र में आते हैं।

बृहत्संहिता ग्रंथ में आचार्य वराहमिहिर ने नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार शनिचार के विषय में कहा है कि- यदि शनि श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित होकर निर्मल मूर्ति वाला हो तो पृथ्वी वर्षा के जल से परिपूर्ण होती है। यदि आश्लेषा, शतभिषा या ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो सुंदर क्षेत्र और थोड़ी वृष्टि होती है। इसी प्रकार मूल नक्षत्र में स्थित हो तो दुर्भिक्ष, युद्ध और वर्षा का अभाव होता है। इस प्रकार संक्षेप में फल कथन के उपरान्त संहिता ग्रंथों में शनि संचरण के विशेष फल को प्रत्येक नक्षत्रों के अनुसार विस्तार से प्रतिपादित किया गया है।

1.2.1 अश्विनी-भरणी नक्षत्रगत शनि का फल

सर्वप्रथम संहिता ग्रंथों में अश्विनी नक्षत्रगत शनि संचरण को बताया गया है ।यदि शनि अश्विनी तथा भरणी नक्षत्र में स्थित हो तो इन दोनों नक्षत्रों का विशिष्ट फल आचार्य वराहमिहिर ने इस प्रकार से प्रतिपादित किया है।

तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः ।
याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृतिकान् ।। (बृ.सं.,10/3)

भावार्थ- अर्कज: = शनैश्चर, अश्विगत: = अश्विनी नक्षत्र में स्थित हो तो, तुरगान् = अश्वों को, उपचारक: = रक्षक , तुरगोपचारकान् = अश्वों के रक्षक को, कवीन् = कवियों को, वैद्यान् = कायचिकित्सकों को, आमात्यान् = मंत्रियों को, हन्ति = नाश करता है।

यदि अर्कज: = शनि, याम्ये = भरणी नक्षत्र में अवस्थित हो तो, नर्तकान् = नृत्य करने वालों को, वादकान् = बजाने वाले लोगों को, गेयान् = गायकों को, क्षुद्रान् = नीच लोगों को, नैकृतिकान् = निषाद जाति के लोगों को, नाशयति = नाश करता है।

इसका आशय यह है कि शनि ग्रह जब अश्विनी नक्षत्र में गमन करता है तो घोड़ा, घोड़े के उपचारक अर्थात् रक्षक को, कवि कर्म में कुशल लोगों को, काय- चिकित्सकों को और मंत्रियों का नाश करता है। इसी प्रकार शनि जब भरणी नक्षत्र में अवस्थित होता है तो नृत्य करने वाले, बजाने वाले, गाने वाले, अन्याय पथ पर चले वाले तथा निषाद जाति इन सबका नाश करता है।

1.2.2 कृत्तिका-रोहिणी नक्षत्रगत शनि का फल

नक्षत्रों के क्रम में तीसरा नक्षत्र कृत्तिका है। इसके स्वामी अग्नि हैं। यदि कृत्तिका नक्षत्र में शनि बैठा हो तो विशेष वस्तु से आजीविका चलाने वाले लोगों और राष्ट्र के सेना के प्रधान को प्रभावित करता है ।जिसका आशय है कृत्तिका नक्षत्रगत शनि अग्नि से आजीविका चलाने वाले लोगों जैसे- सुवर्णकार, लोहकार प्रभृति के लोगों को तथा प्रधान सेनापति को पीड़ित करता है ।इस प्रसंग में आचार्य वराहमिहिर ने कहा है –

"बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्चमूपाश्च" (बृ.सं.,10/ 4)

भावार्थ – यदि सौरे = शनि, बहुलास्थे = कृत्तिका नक्षत्र में अवस्थित हो तो, अग्न्युपजीविन: = अग्नि से आजीविका चलाने वालों को, चमूपा: = सेनापतियों को, पीड्यन्ते = कष्ट देता है।

रोहिणी चौथा नक्षत्र है और इसके स्वामी ब्रह्मा हैं। रोहिणी नक्षत्रगत शनि देश विशेष में वास करने वाले लोगों को तथा गाड़ी से आजीविका चलाने वाले को प्रभावित करता है। इस विषय में बृहत्संहिता में वर्णन प्राप्त होता है कि यदि शनि रोहिणी नक्षत्र में स्थित हो तो कोशल देश वासियों, मद्र देश के रहने वाले लोगों, काशी के लोगों, पाञ्चाल देश में रहने वाले मनुष्यों को तथा गाड़ी से आजीविका चलाने वालों का नाश करता है। यथा –

"रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिका:" (बृ.सं., 10/4)

यदि सौरे = शनि, रोहिण्यां = रोहिणी नक्षत्र में स्थित हो तो, कोशल = कोशल देश के लोगों को, मद्रा: = मद्र देश में रहने वाले मनुष्यों को, काशय: = काशी में वास करने वाले लोगों को, पाञ्चाला: = पाञ्चाल देश वासियों को (सम्प्रति पंजाब राज्य में स्थित है), शाकटिका: = वाहन से जीविका चलाने वालों को, पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

1.2.3 मृगशिरा-आर्द्रा नक्षत्रगत शनि का फल

अश्विन्यादि क्रम से पाँचवाँ नक्षत्र मृगशिरा है। इसके स्वामी चन्द्रमा हैं। इस नक्षत्र में शनि जब स्थित होता है तो वत्स देश में वास करने वाले लोगों को,यज्ञ कराने वाला (याजक), यजमान, प्रधान व्यक्ति और मध्य देश को पीड़ित करता है।

इस सन्दर्भ में बृहत्संहिता में अधोलिखित प्रसङ्ग प्राप्त होता है –

"मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च" (बृ.सं.,10/5)

भावार्थ- यदि सौरि = शनि, मृगशिरसि = मृगशिरा नक्षत्र में स्थित हो तो, वत्सजना: = वत्स देश में रहने वाले लोगों को, याजका: = यजन्तीति याजका:, ऋत्विज: = यज्ञ करने वाले लोगों को, यजमाना: = याज्ञिका: = यज्ञ कराने वाला व्यक्ति अथवा ब्राह्मणों से धार्मिक कृत्य कराने वाला व्यक्ति, आर्यजना: = प्रधान लोगों को, मध्यदेशा: = मध्य प्रदेश के लोगों को, एतान् पीड्यन्ते = इन सबकों पीड़ित करता है।

मृगशिरा नक्षत्रगत शनि संचरण के प्रभाव को प्रतिपादित करने के पश्चात् आर्द्रा नक्षत्र में शनि गमन के प्रभावों को आचार्यों ने व्याख्यायित किया है। आर्द्रा नक्षत्र के स्वामी शिव हैं। आर्द्रा नक्षत्रगत शनि पारतर देश में रहने वाले जनों, मद्र देश में निवास करने वाले लोगों, तेली जाति, धोबी जाति और चोरों को प्रभावित करता है। यथा –

"रौद्रस्थे पारतरमठास्तैलिकरजकचौराश्च" (बृ.सं.,10/5)

जिसका आशय इस प्रकार है , यदि शनि रौद्रस्थे = आर्द्रा नक्षत्र में स्थित हो तो , पारतरजना: = पारतर देश में वास करने वाले लोगों को, मठा: = मठ में रहने वाले लोगों को, तैलिका: = तेली जाति के लोगों को, रजका: = धोबी जाति के लोगों को , चौरा: = चोरी करने वालों को, पीड्यन्ते = कष्ट देता है।

1.2.4 पुनर्वसु-पुष्य नक्षत्रगत शनि का फल

नक्षत्रों के क्रम में पुनर्वसु सातवाँ नक्षत्र है।इसके स्वामी अदिति हैं। इस नक्षत्र में शनि गमन का फल वर्णित करते हुये आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि यदि शनि पुनर्वसु नक्षत्र में बैठा हो तो स्थान विशेष यथा- पंजाब, गुहा, सौराष्ट्र, सिंधु के समीप तथा सौवीर देश में रहने वाले लोगों को पीड़ित करता है। जैसे –

"आदित्ये पाञ्चनदप्रत्यंतसुराष्ट्रसिंधुसौवीरा:" (बृ.सं.,10/6)

भावार्थ- यदि शनि आदित्ये = पुनर्वसु नक्षत्र में स्थित हो तो, पाञ्चनदजना: = पाञ्च नद वाले क्षेत्र अर्थात् पंजाब वासियों को, प्रत्यंता: = गह्वर वासियों को, सौराष्ट्रा: = सौराष्ट्र प्रदेश वासियों को, सिंधुजना: = सिंधु नदी के तट पर रहने वाले लोगों को, सौवीरा: = सौवीर क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों को, पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

पुनर्वसु नक्षत्र में शनि के विशिष्ट फल कथन के अनन्तर आचार्य वराहमिहिर ने पुष्य नक्षत्रगत शनि संचरण का फल कहते हैं। पुष्य नक्षत्र के स्वामी गुरु हैं।यदि शनैश्चर पुष्य नक्षत्र में स्थित हो तो घण्टा बजाने वाले, घोषिक अर्थात् श्रावक अथवा गुहा में निवास करने वाले लोग , यवन जाति के लोग, वणिक्, किरात, धूर्त तथा पुष्पों को पीड़ित करता है। यथा –

"पुष्ये घाण्टिकघौषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि" (बृ.सं.,10/6)

भावार्थ- यदि शनि पुष्ये = पुष्य नक्षत्र में अवस्थित हो तो, घाण्टिका: = घंटा बजने वाले को, घौषिका: = श्रावकों को, यवना: = यवन जाति के लोगों को, वणिक: = बनिया जाति के लोगों को, कितवा: = द्यूत क्रीडा में रत लोगों को = जुआरी, कुसुमानि = पुष्पों को, एतानि पीड्यन्ते = इन सबकों कष्ट देता है।

1.2.5 आश्लेषा-मघा नक्षत्रगत शनि का फल

नक्षत्रों के क्रम में आश्लेषा नौवाँ नक्षत्र है। इसके स्वामी सर्प हैं। आश्लेषा नक्षत्र में शनि जब गमन करता है तो जलचर जीवों को अपने प्रभाव से प्रभावित करता है।

जिसका आशय है जल से उत्पन्न प्राणियों और सर्पों को पीड़ित करता है। जैसा कि बृहत्संहिता में कहा गया है –

"सार्पे जलरुहसर्पा:"

भावार्थ- यदि शनि सार्पे = आश्लेषा नक्षत्र में बैठा हो तो, जलरुहा: = जल से उत्पन्न जीवों अथवा द्रव्यों को, सर्पा: = सर्पों को पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

गर्ग संहिता के अनुसार यदि शनि आश्लेषा नक्षत्र में अवस्थित हो तो सर्प, कच्छप, नाग, मछली, सरीसृप जंतुओं को नष्ट करता है।

आश्लेषा नक्षत्र में शनि के विशिष्ट फल कथन के पश्चात् मघा नक्षत्र का फल पूर्वाचार्यों ने प्रतिपादित किया है।मघा नक्षत्र के स्वामी पितर हैं। मघा नक्षत्रगत शनि स्थान विशेष एवं जाति विशेष को प्रभावित करता है। स्थान विशेष में बाह्लीक क्षेत्र के लोगों को, चीन देश में वास करने वाले लोगों को, गान्धार क्षेत्र वासियों को, शूलिक देश के लोगों और पारत देश में रहने वाले मनुष्यों को तथा जाति विशेष में वैश्य जाति के लोगों को, कोष्ठागार, व्यापारी वर्ग को और किरात जाति के लोगों को पीड़ित करता है। यथा-

..... पित्र्येबाह्लीकचीनगान्धारा:"।

शूलिकपारतवैश्या: कोष्ठागाराणि वणिजश्च ।। (बृ.सं.,10/7)

भावार्थ- पित्र्ये = मघा नक्षत्र में स्थित हो तो, बाह्लीका: = बाह्लीक क्षेत्र के लोगों को , चीना: = चीन देश वासियों को, गान्धारा: = गान्धार देश के निवासियों को, शूलिका: = शूलिक क्षेत्र के लोगों को, पारता: = पारत क्षेत्र के लोगों को, वैश्या: = वैश्य वर्ण के लोगों को, कोष्ठगाराणि = कोषागार को, वणिज: = बनिया वर्ग अथवा व्यापारी वर्ग को, पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

1.2.6 पूर्वाफाल्गुनी-उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रगत शनि का फल

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के स्वामी भग हैं। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में अवस्थित शनि मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, और कषाय इन छः प्रकार के रस विक्रेता को, वेश्या, कुमारी तथा महाराष्ट्र देश में रहने वाले लोगों को पीड़ित करता है। यथा-

"भाग्ये रसविक्रयिण: पण्यस्त्रीकन्यकामहाराष्ट्रा:" (बृ.सं.,10/8)

भावार्थ- यदि शनि भाग्ये = पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित हो तो, रसविक्रयिण: = रस के विक्रेता को = रस छ: प्रकार के होते हैं- मधुर अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, और कषाय , इनको बेचने

वाले को, पण्यस्त्रिय: = वेश्या को, कन्यका: = कुमारी कन्याओं को, महाराष्ट्रा: = महाराष्ट्र देश वासियों को, पीड्यन्ते = पीड़ा देता है।

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रगत शनि के विशिष्ट फल कथानान्तर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में शनि के विशिष्ट फल को यहाँ व्याख्यायित किया जा रहा है ।उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के स्वामी आर्यमा हैं । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनैश्चर राजा, गुड, नमक, भिक्षुक, जल और तक्षशिला नगरी को कष्ट देता है। जैसा कि आचार्य वराहमिहिर ने भी प्रतिपादित किया है-

"आर्यम्णे नृपगुडलवणभिक्षुकाम्बूनि तक्षशिला" (बृ.सं.,10/8)

भावार्थ- आर्यम्णे = उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में स्थित शनि, नृपा: = राजाओं को, गुडम् = ईख से बना खाद्य पदार्थ, लवणम् = नमक, भिक्षुका: = भिक्षा माँगने वाले को, अम्बूनि = जल को, तक्षशिला: = तक्षशिला क्षेत्र के लोगों को, पीड्यन्ते = इनकों भी पीड़ित करता है।

1.2.7 हस्त नक्षत्रगत शनि का फल

हस्त नक्षत्र के स्वामी सूर्य हैं। हस्त नक्षत्र में स्थित शनि नाई को, कुम्भकार को, तेली को, चौर कर्म में प्रभृत लोगों को, वैद्य को, वस्त्र सिलने वाले कारीगरों को, हाथी पकड़ने वाले को, वेश्याओं को, कोशल देश में रहने वाले लोगों को, पुष्प की माला बनाने वाले को पीड़ा देता है। यथा-

हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिका द्विपग्राहा: ।
बन्धक्य: कौशलका: मालाकाराश्च पीड्यन्ते ।। (बृ.सं.,10/9)

भावार्थ- यदि शनैश्चर हस्ते = हस्त नक्षत्र में बैठा हो तो, नापिता: = नई जाति को, चाक्रिका: = कुम्भकार और तेली आदि को, भिषज: = वैद्यों को, सूचिका = सिलाई कर्म में संलग्न व्यक्तियों को, द्विपा: = हाथियों को, तेषां ग्राहा = उनको पकड़ने वाले लोगों को, बन्धक्य: = वेश्याओं को, च = और, मालाकारा: = माली को, कौशलका: = कोशल प्रदेश के लोगों को, पीड्यन्ते = कष्ट देता है।

1.2.8 चित्रा-स्वाती नक्षत्रगत शनि का फल

चित्रा नक्षत्र के स्वामी त्वष्टा हैं । यदि शनि चित्रा नक्षत्र में स्थित हो तो स्त्रियों को, लेखकों, चित्रकारों,भाण्ड अर्थात् अनेक प्रकार के वैश्यों के धन को अपने प्रभाव से कष्ट देता है। जैसे –

"चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डनि" (बृ.सं.,10/10)

भावार्थ- चित्रास्थे = चित्रा नक्षत्र में स्थित शनि, प्रमदाजना: = स्त्रीयों को, लेखका: = लेखन कर्म में कुशल जनों को, चित्रज्ञा: = चित्रकारों, चित्रभाण्डानि = अनेक प्रकार के वणिकों के धन को, पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

चित्रा नक्षत्र में शनि गमन के विशिष्ट फल को कहने के बाद स्वाती नक्षत्रगत फल को आचार्य ने प्रतिपादित किया है। स्वाती नक्षत्र के स्वामी वायु हैं। जब स्वाती नक्षत्र में शनि स्थित हो तो मागध, गुप्तचर को, दूत को, सारथी को, नाव चलाने वाले को तथा नट आदि को पीड़ित करता है ।यथा-

"स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्या:" (बृ.सं.,10/10)

भावार्थ- स्वातौ = स्वाती नक्षत्र में स्थित शनि, मागध = कीर्ति गान करने वाले या मगध देश में रहने वाले लोगों को, चरा: = गुप्तचरों, सूता: = सारथी अथवा कथा श्रावकों, पोतप्लवा: = नाविकों, नटा: = नृत्य आदि को जानने वालों को पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

1.2.9 विशाखा-अनुराधा नक्षत्रगत शनि का फल

विशाखा नक्षत्र के स्वामी इन्द्र और अग्नि दोनों हैं। विशाखा नक्षत्र में शनि जब संचरण करता है तो त्रिगर्त, चीन तथा कुलूत देश में रहने वाले मनुष्यों, कुङ्कुम, लाख, धान्य, मञ्जीष्ठ और कुसुम्भ के पुष्पों का नाश करता है। यथा-

ऐन्द्राग्नाख्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा।
सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुम्भं च क्षयं याति ॥ (बृ.सं.,10/11)

भावार्थ- ऐन्द्राग्न्याख्ये = विशाखा नक्षत्र में स्थित शनि, त्रैगर्तजना: = त्रिगर्त देश में वास करने वाले व्यक्तियों को, चीना: = चीन देश वासियों, कौलूता: = कुलूत निवासियों, कुङ्कुमम् = काश्मीर, लाक्षा: = ज्वलनशील पदार्थ, सस्यानि = धान्य, माञ्जिष्ठम् = मञ्जिष्ठ के पुष्प, कौसुम्भम् = कुसुम के पुष्प विशेष को क्षयम् = नष्ट, याति = करता है।

इस प्रकार विशाखा नक्षत्र में शनि के विशिष्ट फल को प्रतिपादित करने के उपरांत अनुराधा नक्षत्र में शनि के विशेष फल को प्रायश: संहिता ग्रंथों में बताया गया है।

अनुराधा नक्षत्र के स्वामी मित्र हैं। यदि शनैश्चर अनुराधा नक्षत्र में स्थित हो तो कुलूत देश वासियों, तंगण, खस काश्मीर आदि देशों में स्थित मनुष्यों को, मंत्री, कुम्भकार, तेली, घंटा बजाने वाले और शिल्पियों को प्रभावित करता है तथा मित्रों में मतभेद उत्पन्न करता है। जैसे-

मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीरा: समन्त्रिचक्रचरा:।
उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम् ॥ (बृ.सं.,10/12)

भावार्थ- मैत्रे = अनुराधा नक्षत्र में शनि, कुलूतजना: = कुलूत देश वासियों, तङ्गणजना: = तंगण देश में रहने वाले, खसा: = पर्वत क्षेत्र में निवास करने वाले, काश्मीरा: = काश्मीर प्रदेश में निवास करने वाले लोगों को, समन्त्रिभि: = मंत्रियों सहित, चक्रचरै: = कुम्भकार और तेली आदि, उपतापम् = उपद्रव को, यान्ति = प्राप्त करते हैं। च = और इसी प्रकार घाण्टिका: = घण्टा बजाने वाले भी उपद्रव अर्थात् संताप को प्राप्त करते हैं। मित्राणाम् = मित्रों का, आपस में विभेद: = मतभेद पैदा करता है।

1.2.10 ज्येष्ठा-मूल नक्षत्रगत शनि का फल

ज्येष्ठा नक्षत्र के स्वामी इन्द्र हैं। ज्येष्ठा नक्षत्र में शनि राजा, पुरोहित, राजाओं से पूजित, शूरवीर, सन्यासियों के मठ, प्रधान कुल और जनसंघियों को पीड़ित करता है। मूल नक्षत्र के स्वामी राक्षस है। मूल नक्षत्र में स्थित शनैश्चर काशी, कोशल, पाञ्चाल आदि देश में वास करने वाले मनुष्यों को तथा फल, औषध और योद्धा को पीड़ित करता है। इन दोनों नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार आचार्य वराहमिहिर ने इस प्रकार से शनि के विशिष्ट फल को प्रतिपादित किया है -

ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्य:।
मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोद्धा: ॥ (बृ.सं.,10/13)

भावार्थ- ज्येष्ठासु = ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित शनि, नृपा: = राजाओं, पुरोहिता: = राजाओं के आचार्य, नृपसत्कृता: = राजाओं से पूजित, शूरा: = संग्रामवीरों, गणा: = मठ आदि, कुलानि = प्रधान कुल को, श्रेण्य: = अनेक सजातीयों के संघ = जनसंघियों को, पीड्यन्ते = पीड़ित करता है।

मूले = मूल नक्षत्र में स्थित होकर शनि, काशय: = काशीस्थ मनुष्यों को, कोशला: = कोशल प्रदेश में रहने वाले लोगों को, पाञ्चाला: = पाञ्चाल क्षेत्र में वास करने वाले जनों को, फलानि = आम्र आदि फलों को, औषधय: = औषधियों, योद्धा: = संग्राम में कुशल लोगों को, अपने संताप से पीड़ित करता है।

1.2.11 पूर्वाषाढ़ा-उत्तराषाढ़ा नक्षत्रगत शनि का फल

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के स्वामी जल हैं। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में शनि स्थित होकर क्षेत्र विशेष को प्रभावित करता है। इस संदर्भ में शनि के विशिष्ट फल को व्याख्यायित करते हुए आचार्य वराहमिहिर कहते है कि यदि शनैश्चर पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में बैठा हो तो अङ्ग देश, बङ्ग प्रान्त, कोशल प्रान्त, गिरिव्रज क्षेत्र, मगध प्रान्त, पुंड्र क्षेत्र, मिथिला प्रान्त और ताम्रलिप्ती देश में रहने वाले मनुष्यों को पीड़ित करता है। यथा –

आप्येऽङ्गवङ्गकौशलगिरिव्रजा मगधपुंड्रमिथिलाश्च।
उपतापं यान्ति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च ॥ (बृ.सं.,10/14)

भावार्थ- आप्ये = पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित शनि, अङ्गा: = अङ्ग देश के लोगों को, बङ्गा: = बङ्ग प्रदेश वासियों को, कौशला: = कौशल प्रदेश वासियों, गिरिव्रजा = पर्वत क्षेत्र में वास करने वालों को, मगधा: = मगध क्षेत्र वासियों, पुंड्रा: = पुंड्र प्रदेश के लोगों को, मिथिला: = मिथिला देश में रहने वाले मनुष्यों को, उपतापम् = संताप को, यान्ति = प्राप्त करते हैं। ताम्रलिप्त्याम् = ताम्रलिप्त नगरी में, ये जना : = जो लोग, वसन्ति = रहते हैं, ते अपि = वे भी, संताप को प्राप्त करते हैं।

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के स्वामी विश्वदेव हैं। इसी प्रकार उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में स्थित होकर शनि दशार्ण देश में रहने वाले मनुष्यों को, यवनों, उज्जयिनी देश को, शबर जाति को, पर्वत पर निवास करने वाले लोगों और कुन्तिभोज देश में रहने वाले लोगों को नष्ट करता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में शनि के विशिष्ट फल को इस प्रकार से आचार्य वराहमिहिर ने कहा है। यथा-

विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च ।
उज्जयिनीं शबरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ॥ (बृ.सं.,10/15)

भावार्थ- विश्वेश्वरे = उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में, अर्कपुत्र: = शनि, चरन् = स्थित हो तो, दशार्णान् = दशार्ण देश वासियों को, यवनान् = यवनों को, उज्जयिनीम् = उज्जयिनी जनपद को, शबरान् = शबर जाति के मनुष्यों को, पारियात्रिकान् =

पर्वत पर निवास करने वालों को, कुन्तिभोजान् = राजा कुन्तिभोज के राज्य में रहने वाले मनुष्यों को, निहन्ति = नाश करता है।

1.2.12 श्रवण-धनिष्ठा नक्षत्रगत शनि का फल

श्रवण नक्षत्र के स्वामी विष्णु हैं। श्रवण नक्षत्र में स्थित शनि राजा के अधिकारी, प्रधान ब्राह्मण, वैद्य और पुरोहितों को अपने संताप से पीड़ित करता है। यथा –

"श्रवणे राजाधिकृतान् विप्राग्र्यभिषक्पुरोहितकलिङ्गान्"

अर्थात् श्रवणे = श्रवण नक्षत्र में स्थित शनि, राजाधिकृतान् = राजा के द्वारा अधिकारी पद पर नियुक्त जनों को, विप्राग्र्यान् = विप्रों में अग्र = प्रधान ब्राह्मण, भिषज: = वैद्यों को, पुरोहिता: = आचार्यों को, कलिङ्गान् = कलिङ्ग प्रदेश में निवास करने वाले लोगों को, निहन्ति = नाश करता है।

इसी प्रकार श्रवण नक्षत्र में शनि के विशेष फल को कहने के बाद धनिष्ठा नक्षत्रगत शनि के विशिष्ट फल को कहा जा रहा है।धनिष्ठा नक्षत्र के स्वामी वसु हैं। धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित होकर शनि मगध देश के राजा की विजय और वित्त की रक्षा में नियुक्त अधिकारियों की वृद्धि करता है। यथा-

"वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वधिकृतानाम्" (बृ.सं.,10/16)

भावार्थ- वसुभे = धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित शनि, मगधेशजय: = मगध के राजा की विजय, च = और, धनेष्वधिकृतानाम् = धनाधिकारियों की वृद्धि कराता है।

1.2.13 शतभिषा-पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रगत शनि का फल

शतभिषा नक्षत्र के स्वामी वरुण और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र के स्वामी अजैकपाद हैं। यदि शनैश्चर शतभिषा नक्षत्र या पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में स्थित हो तो वैद्य, कवि, मद्य बेचने वाले, खरीद-बिक्री करने वाले तथा नीति शास्त्र को जानने वाले पीड़ित होते हैं। उक्त दोनों नक्षत्रों में शनि संचरण का विशेष फल इस प्रकार से आचार्यों ने प्रतिपादित किया है –

"साजे शतभिषजि भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवृत्तीनाम्" (बृ.सं.,10/17)

भावार्थ- साजे = पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र, और शतभिषजि = शतभिषा नक्षत्र में स्थित शनि, भिषज: = वैद्य या चिकित्सक को, कवय: = कवियों को, शौण्डिका: = मद्य बेचने वाले, पण्यवृत्तय: = क्रय-विक्रय करने वाले, नीतिवृत्तय: = नीति शास्त्र को जानने वाले, इन सबको नाशयति = नष्ट करता है।

1.2.14 उत्तरभाद्रपद-रेवती नक्षत्रगत शनि का फल

उत्तरभाद्रपद नक्षत्र के स्वामी अहिर्बुध्न्य हैं। उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में शनि स्थित हो तो नदी के तट पर रहने वाले, रथ के अधिकारी,स्त्री और सुवर्ण का नाश करता है। यथा-

"अहिर्बुध्न्ये नद्यो यानकरा: स्त्रीहिरण्यं च"

भावार्थ- अहिर्बुध्न्ये = उत्तराभद्रपद नक्षत्र में स्थित शनि, नद्य: = नदी के तीर पर जो निवास करते हैं उनको, यानकरा: = रथ के अधिकारी को, स्त्रिय: = महिलाओं को, हिरण्यम् = सुवर्ण को, इन सबको निहन्ति = हानि पहुँचाता है।

रेवती नक्षत्र के स्वामी पूषा हैं। इसी प्रकार रेवती नक्षत्र में शनैश्चर बैठा हो तो राजा के आश्रय में रहने वाले, क्रौंचद्वीप वासियों, शारदीय धान्य, शबर जाति और यवनों को प्रभावित करता है।

इस संदर्भ में बृहत्संहिता में कहा गया है –

रेवत्यां राजभृता: क्रौंचद्वीपाश्रिता: शरत्सस्यम् ।
शबराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे चरति ।। (बृ.सं.,10/18)

भावार्थ- रेवत्याम् = रेवती नक्षत्र में, शनैश्चरे चरति = शनि स्थित हो तो, राजभृता: = राजा के नौकर, क्रौंचद्वीपाश्रिता: = क्रौंचद्वीप में निवास करने वाले, शरत्सस्यम् = शरत् ऋतु में होने वाले धान्य , शबरा: = शबर जाति के लोग, यवना: = म्लेच्छजाति, निपीड्यन्ते = पीड़ित होते हैं।

1.3 विविध वर्णगत शनिचार का फल कथन

जिस प्रकार अश्विन्यादि सत्ताईश नक्षत्रों में शनि का गमन होने पर अपने प्रभावों से उसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को प्रभावित करता है, उसी प्रकार विविध वर्णों का होकर शनि अपने विशेष फल के द्वारा उसके अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों को भी अपने प्रभावों से संक्रमित करता है। नक्षत्रगत शनि के विशिष्ट फल को प्रतिपादित करने के उपरान्त अब यहाँ विविध वर्णगत शनि के फल को बताया जा रहा है।

यदि आकाश में शनि का वर्ण अनेक वर्णों का दिखाई पड़े तो पक्षियों का नाश करता है। पीला वर्ण का शनि यदि आकाश में दृष्टिगत हो तो धरती पर दुर्भिक्ष होता है। आकाशस्थ शनि का वर्ण रक्त सदृश हो तो युद्ध होता है। यदि शनि गगन में भस्म वर्ण का दृष्टिगोचर हो तो प्रजाओं में परस्पर द्वेष की भावना उत्पन्न होती है। यथा –

अण्डजहा रविजो यदि चित्र: क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूख: ।
शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ।। (बृ.सं.,10/20)

यदि शनैश्चर का वर्ण वैदूर्य मणि के समान निर्मल हो तो प्रजाओं को शुभ करने वाला होता है। बाण या अतसी पुष्प के समान काला हो तो भी शुभ होता है। साथ ही शनि जिस प्रकार के वर्ण को धरण करता है, उसके सदृश वर्ण वाले मनुष्यों का नाश करता है। जैसे – श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मण वर्ण के मनुष्यों को, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रिय का,पीत वर्ण का हो तो वैश्य का तथा कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्र का नाश करता है। इस प्रकार हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों का वचन है।

वैदूर्यकान्तिविमल: शुभकृत् प्रजानां बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्त: ।
यं चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान् सूर्यात्मज: क्षपयतीति मुनिप्रवाद: ।।

1.4 द्वादशराशिगत शनिचार का फल विमर्श

मेषादि द्वादश राशियों में शनि भ्रमण करता है तो तत्तद राशियों के अनुरूप अपना फल देता है। वृश्चिक, मेष, सिंह तथा कर्क राशि में जब शनि भ्रमण करता है तो छोटे पदों वाले प्रजाओं को अनुकूल परंतु वृष्टि का कहीं-कहीं भय बना रहता है, तथापि लोग जिस किसी प्रकार से जीवित रहते हैं।इसी प्रकार कन्या राशि, मिथुन राशि, वृष राशि, कुम्भ राशि तथा धनु राशि का शनि हो तो अपने क्षेत्र में स्थित होने पर लोगों के लिए शुभप्रद होता है। बङ्गाल, बिहार, कश्मीर, कलिङ्ग, गौड़ एवं सौराष्ट्र देश के लिए अशुभ होता है। जब सूर्य पुत्र शनि मीन राशि में जाता है तो उस समय राजा लोग क्षुभित होते हैं। पृथ्वी चलायमान हो जाती है। चोरों और डाकुओं

का समूह हर्षित हो जाता है। बुद्धिमान् लोगों की बुद्धि नष्ट हो जाती है। जनपद का हरण होता है। बादल विचित्र वर्षा करते हैं। सूर्य और चंद्रमा की किरणें ग्रहगणों के साथ मंद पड़ जाती हैं। प्रचण्ड आँधी चलती है। और संपूर्ण जगत् चक्राकार भ्रमण करने लगता है।

1.5 सारांश

विभिन्न नक्षत्रों, द्वादश राशियों, विविध वर्णों में शनि के संचरण से उत्पन्न फलों का निरूपण इस पाठ में किया गया। जिसका विस्तृत अध्ययन आपने किया ।शनि यदि श्रवण नक्षत्र, स्वाती नक्षत्र, हस्त, नक्षत्र, आर्द्रा नक्षत्र, भरणी या पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में स्थित हो तो प्रचूर मात्र में पृथ्वी पर वर्षा होती है। आश्लेषा नक्षत्र, शतभिषा या ज्येष्ठा नक्षत्र में स्थित शनि सुभिक्ष कारक होता है परंतु प्रभूत वर्षा नहीं होती है। मूल नक्षत्र में स्थित हो तो दुर्भिक्ष, युद्ध और वर्षा का अभाव होता है। कुछ नक्षत्रों में स्थित शनि के द्वारा उत्पन्न फलों का सम्यक् अध्ययन करने के उपरान्त अश्विनी से आरम्भ कर रेवती पर्यन्त शनिचार से किस प्रकार के

के फल उत्पन्न होते हैं, इन सबका भी आपने इस इकाई में विशद् अध्ययन किया। वर्णानुसार शनि संचरण के फल को भी प्रतिपादित किया गया है। चित्र वर्ण से युक्त शनि पक्षियों का हन्ता होता है। पीत रश्मि से संयुत होकर दुर्भिक्ष उत्पन्न करता है। रक्त वर्ण से अन्वित शनि संग्राम कारक होता है। भस्म तुल्य कान्ति से युक्त शनि शत्रु की वृद्धि करता है। वैदूर्य मणि के सदृश दृश्यमान शनि अर्थात् निर्मल कान्ति वाला हो तो श्रेय को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार शनि जिस प्रकार के वर्ण का आश्रय को धारण करता है, उसके समान वर्ण के मनुष्यों का नाश करता है। इसी प्रकार द्वादश राशियों में शनि संचरण का फल भी विस्तार से निरूपित किया गया है। मेष,कर्क,सिंह और वृश्चिक राशि का शनि वर्षा कारक होता है। कन्या राशि, मिथुन राशि, वृष राशि, कुम्भ राशि तथा धनु राशि का शनि स्वक्षेत्रीय लोगों के लिए शुभप्रद होता है। बङ्गाल, बिहार, कश्मीर, कलिङ्ग, गौड़ एवं सौराष्ट्र देश के लिए अशुभ होता है। मीन राशि का शनि राजाओं को क्षुभित करता है। धरा गतिशील हो जाती है। अत्यधिक वर्षा होती है। सूर्य और चंद्र की किरणें मन्द हो जाती हैं। हवा का वेग तीव्र हो जाता है। जब विशाखा नक्षत्र में गुरु और कृत्तिका नक्षत्र में शनि बैठा हो तो उस समय में प्रजाओं में भयंकर अनीति उत्पन्न होती है तथा जब एक ही नक्षत्र में दोनों बैठे हो तो उस समय नगरों में द्वेष उत्पन्न होता है। यदि शनि रोहिणी शकट भेद कर दे तो पृथ्वी पर बारह वर्षों तक अकाल पड़ता है तथा जीवन अत्यंत दुष्कर हो जाता है। इस प्रकार यह इस पाठ का सारांश है।

1.6 पारिभाषिक शब्द

मद्र देश = एतरेय ब्राह्मण के अनुसार हिमालय के निकट होने के कारण मद्र देश को उत्तर कुरु भी कहा जाता था। जम्मू कश्मीर का नाम मद्र देश था।

त्रिगर्त = तीन गह्वरों वाला प्रदेश। यह स्थूल रूप से रावी, व्यास और सतलज नदी की उद्गम प्रदेश का नाम था।

कुलूत प्रदेश = उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व प्रदेश का भाग।

लाक्षा = पीपल आदि वृक्षों पर लगे कुछ कीड़ों से बनने वाला एक लाल रंग का पदार्थ जिससे चूड़ियाँ आदि बनाई जाती हैं। लाख और लाह।

तङ्गण = इसका उल्लेख महाभारत के भीष्म पर्व में हुआ है। जिसके अनुसार यह

भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा के परे रहा होगा।

खस = यह प्रदेश भारतीय उपमहाद्वीप के हिमालयी भाग में अवस्थित एक मध्यकालीन राज्य था। वर्तमान नेपाल के पश्चिमी कर्णाली क्षेत्र।

अङ्ग = अङ्ग देश वर्तमान में हरियाणा के करनाल शहर को कहा जाता है।

गिरिव्रज = प्राचीन काल में केकय देश की राजधानी। प्राचीन मगध के राजा जरासंघ की राजधानी जिसे बाद में राजगृह कहते थे।

पुण्ड्र = बंगाल में गङ्गा की मुख्यधारा पद्मा के उत्तर में स्थित प्रदेश को पुण्ड्र प्रदेश कहते थे।

ताम्रलिप्त = बंगाल की खाड़ी में स्थित एक प्राचीन नगर था। पश्चिम बंगाल राज्य के मिदनापुर जिले का आधुनिक नाम तामलुक है, जो प्राचीन ताम्रलिप्त था।

सौवीर = सिंधु अथवा सिंधु नदी के आसपास लगे प्रदेश का नाम था।

पाञ्चनद = पाँच नदियों झेलम, चेनाब, रावी, व्यास और सतलज का संगम, जिसे वेदों में पुरातन पंजाब कहा गया है।

प्रत्यन्त = अत्यधिक गहरा एवं अंधेरा स्थान अथवा दुर्भेद्य तथा विषम स्थान।

पाञ्चाल = प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों में से एक था। यह उत्तर हिमालय के भाभर क्षेत्र से लेकर दक्षिण में चर्मनवती नदी के उत्तरी तट के बीच के मैदानों में फैला हुआ था।

दशार्ण = बुंदेलखण्ड का क्षेत्र। मध्य प्रदेश का धसान नदी से सिंचित प्रदेश है।

क्रौंचद्वीप = क्रौंच द्वीप पौराणिक भूगोल की कल्पना के अनुसार पृथ्वी के सप्त महाद्वीपों में से एक महाद्वीप है। इस द्वीप में क्रौंच नामक पर्वत स्थित है।

1.7 बोधप्रश्न

1. शनिचार के स्वरूप की विशद् विवेचना करें।
2. अश्विनी नक्षत्र से मघा नक्षत्र पर्यन्त शनि संचरण के फल को प्रकाशित कीजिए।
3. विविध वर्णगत शनिचार के विशिष्ट फल पर प्रकाश डालिए।
4. द्वादशराशिगत शनि गमन के फल को व्याख्यायित कीजिए।
5. हस्त से ज्येष्ठा नक्षत्र पर्यन्त शनि के विशेष फल को स्पष्ट कीजिए।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बृहत्संहिता, व्याख्याकार- पं. अच्युतानन्द झा,चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी 2014।
2. भारतीय ज्योतिष, मूल लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, अनुवादक- झारखंडी शिवनाथ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990।
3. बृहत्संहिता, (भट्टोत्पल टीका सहित), सं. सं. वि. वि., वाराणसी, 1997।
4. वशिष्ठ संहिता, संपादक- प्रो. गिरिजा शङ्कर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2016।
5. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,दिल्ली,2014।

इकाई 2 राहुचार

इकाई की संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राहुचार : संक्षिप्त परिचय

- 2.2.1 विविध मतानुसार राहु का ग्रहत्व प्रतिपादन
- 2.2.2 राहुकृत ग्रहण-स्वरूप विवेचन
- 2.2.3 पर्व भेद एवं उनके फल
- 2.2.4 ग्रस्तोदित और ग्रस्तास्त ग्रहण-फल विमर्श
- 2.2.5 अयन एवं दिशागत ग्रहण-फल विवेचन

2.3 द्वादशराशिगत ग्रस्त चन्द्रार्क फल कथन

2.4 ग्रास भेद तथा तत्फल विचार

2.5 विविधवर्णगत राहु फल विमर्श

2.6 ग्रस्त भौमादि पञ्च ग्रहों का फल कथन

2.7 चैत्रादि द्वादशमासगत ग्रहण फल विवेचन

2.8 चन्द्रार्क मोक्ष प्रकार, भेदलक्षण एवं तत्फल विचार

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 बोध-प्रश्न

2.12 सन्दर्भ ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- राहु का ग्रहत्व-प्रमाण को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- राहुकृत ग्रहण के स्वरूप को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- अयन एवं दिशा के अनुसार ग्रहण के फल को रेखांकित करने में कुशल होंगे।
- ग्रास के विविध भेद एवं उनके फल को प्रकाशित करने में सक्षम होंगे।
- द्वादशराशिगत सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के फल को निरूपित करने में निपुण होंगे।
- द्वादशमासगत ग्रहण के फल को बताने में समर्थ होंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

2.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाई में आपलोगों ने शनिचार के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई राहुचार से सम्बन्धित है। राहु का ग्रहण में महती भूमिका है। राहु की संज्ञा तम अथवा अंधकार, छाया और अगु भी है। पुराणों में राहु के विषय में वर्णन मिलता है की राहु सैंहिकेय नामक असुर था। राहु के विषय में आचार्यों के विविध मत प्राप्त होते हैं। कुछ आचार्य राहु को ग्रह स्वीकार करते हैं, कुछ आचार्य के अनुसार मुख और पुच्छ से विभक्त अङ्ग है जिसका वह राहु है,ऐसा उपदेश करते हैं। राहुचाराध्याय नामक इस पाठ में आपको राहु के संचरण के विषय में ज्ञान प्राप्त होगा। इस पाठ में आप राहु के ग्रहत्व विचार प्रतिपादन में मतान्तर, राहु ग्रह के रूप में आकाश में क्यों नहीं दृष्टिगोचर होता ? इसका कारण, राहु के विषय में मतान्तर, राहुकृत ग्रहण के स्वरूप का प्रतिपादन, षाण्मासिक पर्व भेद तथा उनके फल, ग्रस्त सूर्य और चन्द्र के ग्रहण फल, अयन और दिशागत ग्रहण के फल, द्वादशराशिगत ग्रहण के फल, ग्रास भेद और उनके शुभाशुभ फल, विविध वर्णों के अनुसार राहु के फल, ग्रस्त भौमादि पञ्च ग्रहों का फल, चन्द्र और सूर्य के ग्रह दृष्टि विचार तथा द्वादश मासगत ग्रहण के फल इत्यादि विषयों का अध्ययन करेंगे।

2.2 राहुचार : संक्षिप्त परिचय

प्रायशः संहिता ग्रन्थों के राहुचाराध्याय में राहु के द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम उस पौराणिक कथा की ओर उल्लेख किया गया है,जिसमें कहा गया है कि समुद्रमन्थन के समय में उत्पन्न अमृत को जब भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप में देवताओं को पीला रहे थे उस समय राहु छिपकर देवता का रूप बनाकर अमृत का पान कर लिया था। भगवान् विष्णु ने यह जानकर चक्र के द्वारा उसके सिर का छेदन कर दिया, फिर भी वह अमृतपान कर लेने के कारण जीवित रहा। तब भगवान् विष्णु ने उसे आठवें ग्रह का स्थान दिया। वही राहु पर्व-पर्व पर सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसता है। भूगोल के अधो भाग में दर्पण के सदृश्य राहु सदा भ्रमण करता है। राक्षस होने के कारण यही राहु सर्प के आकार से सूर्य-चंद्रमा को ग्रसता है। सम्पूर्ण पृथ्वी की छाया से उत्पन्न ऊपर चन्द्रमा को आच्छादित करके सूर्य के प्रकाश को शीघ्रता से आकर रोक देता है। यह राहु प्रत्येक ग्रहण के पर्व पर धात्री, शशि, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम सात प्रकार के मण्डलों में दिखाई पड़ता है। इससे यह भी सिद्ध होता है की एक वर्ष में अधिकतम सात ही ग्रहण हो सकते हैं। इन पर्वों के नाम के अनुसार इनका फल भी इस इकाई में बताया गया है। जैसे ब्रह्म पर्व में ग्रहण होने पर द्विज, गोप आदि की वृद्धि होती है। इसी प्रकार अन्य पर्वों के भी फल बताये गए हैं। यदि एक मास में सूर्य और चन्द्र ग्रहण दोनों हों, तो आतंक तथा महँगाई का भय एवं राजाओं में परस्पर कलह जानना चाहिए। उत्तरायण और दक्षिणायन में होने वाले ग्रहण के फलों को भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। ग्रस्तोदय और ग्रस्तास्त ग्रहण होने पर किस प्रकार का फल प्राप्त होता है, इसका भी सम्यक् उल्लेख किया गया। जिसका अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। संहिता ग्रंथों में ग्रहण के दस प्रकार के ग्रास कहे गए हैं। इन सभी दसों प्रकार के ग्रासों का फल भी विस्तार से इस इकाई में बताया गया है। इसके उपरान्त चैत्रादि बारह मासों में होने वाले सूर्य और चन्द्र ग्रहण के फलों को विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रकार ग्रहण के फल को बताकर पुनः सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के स्पर्श, ग्रास और मोक्ष को विस्तार से वर्णित किया गया है। इन समस्त विषयों का अध्ययन आप इस अध्याय में करेंगे, जो राहुचार के अन्तर्गत आते हैं।

2.2.1 विविध मतानुसार राहु का ग्रहत्व प्रतिपादन

राहु प्रकाश पिण्ड न होकर छाया ग्रह है। आकाश में इसकी कोई स्थिति नहीं है। वेदों और पुराणों में इसका स्पष्ट वर्णन प्राप्त होता है। संहिता ग्रंथों के अनुसार चंद्र ग्रहण में भूच्छाया तथा सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा को ढकने वाला पदार्थ राहु है। आचार्य वराहमिहिर ने राहु के तीन नामों में उसका (तम, अगु, असुर) एक नाम 'असुर' भी माना है।परवर्ती ज्योतिष में राहु को सौरमण्डल के नौ ग्रहों में से एक है जो कि दुष्ट ग्रह माना गया है। बृहत्संहिता में स्वयं वराहमिहिर ने प्रश्नात्मक शैली में समाधान करते हुए कहते हैं कि राहु नामक राक्षस ने अपना मस्तक कट जाने के कारण प्राणनाश नहीं, अपितु ग्रहत्व को प्राप्त किया – ऐसा कुछ लोग कहते हैं। यथा –

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ (बृ.सं., 5/1)

तथा यदि राहु ग्रह है तो आकाश में सदा अन्य ग्रहों कि तरह क्यों नहीं दिखाई देता? इस प्रकार कि जिज्ञासा आचार्य वराहमिहिर करते हैं। जिसका समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं कि कृष्ण वर्ण का होने के कारण ब्रह्मा जी के वर-प्रदान से पर्व काल से भिन्न समय में राहु आकाश में चन्द्र और सूर्य मण्डल के सदृश नहीं दिखाई देता है।

इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने।
अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥ (बृ.सं., 5/2)

किसी का मत है कि मुख और पुच्छ से विभक्त है जिसका अङ्ग, ऐसा जो सर्प के आकार का है, वही राहु का आकार है। किसी अन्य का मत है कि राहु का कोई भी आकार नहीं है, प्रत्युत वह केवल अन्धकारमय है। इसके विषय में यह प्राप्त होता है कि आचार्य वीरभद्र राहु को मुख और पुच्छ से विभक्त अङ्ग वाला कहते हैं, जबकि आचार्य वसिष्ठ के मत में राहु सर्पाकृति वाला तथा आचार्य देवल के मत में यह तमोमय है। जैसे –

मुखपुच्छविभक्तं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये।
कथयन्त्यमूर्त्तमपरे तमोमय सैंहिकेयाख्यम् ॥ (बृ.सं., 5/3)

राहु के विषय में मतान्तरों का उल्लेख करते हुए आचार्य वराहमिहिर बृहत्संहिता में लिखते हैं कि यदि राहु मूर्तिमान्, राशि में चलने वाला, शिर वाला और बिम्ब वाला होता तो मिश्रित गति वाला होकर भगणार्द्ध पर स्थित रवि और चन्द्र इन दोनों को कैसे ग्रसित करता अर्थात् कभी भी ग्रसित नहीं कर पाता। पुनः इस प्रसङ्ग में कहते हैं कि यदि राहु अनिश्चित गति वाला होता तो गणित से उसका ज्ञान कैसे हो सकता था ? अथवा यदि मुख-पुच्छ-विभक्ताङ्ग वाला होता है तो अपने से दूसरी, तीसरी, चौथी या पाँचवीं राशि पर स्थित रवि और चन्द्र को क्यों नहीं ग्रसता है ? यदि राहु सर्पाकार होता है तो मुख या पुच्छ से छः राशि के अन्तर पर स्थित रवि और चन्द्र को ग्रहण के समय में मुख और पुच्छ के मध्य में स्थित भगणार्द्ध को भी आच्छादित कर देता। यदि राहु दो होते तो चन्द्र के ग्रस्तास्त या ग्रस्तोदय समय में चन्द्र से छः राशि के अन्तर पर स्थित सूर्य भी उसके समान गति वाले राहु से ग्रसित देखने में आता। आशय यह है कि जो कोई दो राहु- एक नियत चार वाला और दूसरा अनियत चर वाला मानते हैं, वह ठीक नहीं है, क्योंकि जब अनियत चार वाले राहु के द्वारा ग्रसित चन्द्र का उदय या अस्त होगा तो उस समय क्षितिज के विरुद्ध दिशा में नियत चार वाले राहु से सूर्य का ग्रहण होना संभव है, पर ऐसा देखने

में नहीं आता। इन समस्त मतान्तरों का निराकरण करते हुए आचार्य वराहमिहिर स्वसिद्धान्त को स्थापित करते हैं, जो इस प्रकार है –

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्द्धात् ॥ (बृ.सं., 5/8)

जिसका आशय है कि अपने ग्रहण में चन्द्रमा भूच्छाया में और सूर्य ग्रहण में सूर्य बिम्ब में प्रविष्ट होता है, अतः चन्द्र का स्पर्श पश्चिम भाग से और सूर्य का स्पर्श पूर्व भाग से नहीं होता है।

2.2.2 राहुकृत ग्रहण-स्वरूप विवेचन

ग्रहण एक खगोलीय घटना है। यह घटना तब होती है जब कोई खगोलीय पिंड अस्थायी रूप से किसी अन्य पिंड की छाया में आता है। तीन आकाशीय पिण्ड का एक सीध में आना। वस्तुतः ग्रहण शब्द का प्रयोग प्रायः सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के लिए किया जाता है। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्य स्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। जब चन्द्रमा भूच्छाया में प्रवेश करता है, तब चन्द्र ग्रहण होता है। सूर्य और चन्द्र ग्रहण तभी हो सकता है, जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा लगभग एक सीधी रेखा में हों। चन्द्रमा की कक्षा का तल पृथ्वी की कक्षा के तल से झुका हुआ है। इसलिए प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या को ग्रहण नहीं होता है ,ऐसा आधुनिक विज्ञान के लोग मानते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार सूर्य की आभासी कक्षा क्रांति वृत्त और चन्द्र कक्षा इन दोनों कक्षाओं का मिलन बिन्दु चन्द्रपात कहलाता है। इसी पात स्थान तथा तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है तब ग्रहण सम्भव होता है। ज्योतिष शास्त्र में इन दोनों सम्पात बिन्दुओं को राहु और केतु की संज्ञा दी गई है। वेदादि शास्त्रों में ग्रहण का कारण स्वर्भानु है। दीप्ति हीन तम होने से इसे परवर्ती वाङ्मय में राहु नामक दैत्य लिखा है। आचार्य वराहमिहिर ने इस संदर्भ में लिखते हैं कि दिव्यादर्शी आचार्यों ने सत्यशास्त्रों के अनुकूल ग्रहण का कारण कहा है। इसमें राहु कारण नहीं है। यथा-

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिरचार्यैः ।
राहुकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः॥ (बृ.सं., 5/13)

इस प्रकार इस श्लोक में आचार्य ने राहुकृत ग्रहण का न होना सिद्ध किया है, परंतु पामर से लेकर महान् ज्ञानियों तक सर्वत्र राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है। श्रुति, स्मृति, पुराण आदि में भी राहुकृत ग्रहण ही प्रसिद्ध है। यदि सूर्य और चन्द्र का ग्रहण राहुकृत नहीं है, तो श्रुति आदि के आलोक के साथ विरोधाभास उत्पन्न होगा। जैसा कि शतपथब्राह्मण में राहुकृत ग्रहण का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। यथा-

स्वर्भानुर्वै वा आसुरिः सूर्यं तमसा विव्याधेति। (श.प.ब., 5/3/2/2)

इस प्रकार ब्रह्मसिद्धान्त में भी राहुकृत ग्रहण का प्रमाण प्राप्त होता है। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने लोक, श्रुति, स्मृति, पुराण आदि का अनुसरण करते हुये अगले श्लोक में ग्रहण में राहु को ग्राहकत्व सिद्ध किया है। इस प्रसङ्ग में उन्होंने लिखा है कि पूर्व समय में ब्रह्मा जी ने राहु को ऐसा वर दिया था कि ग्रहण समय में लोगों के द्वारा दिये गए हुतांश से तेरी तृप्ति होती रहेगी। इस कारण ग्रहण काल में सूर्य और चन्द्र को राहु का सान्निध्य प्राप्त होता है और राहु के कारण ही चन्द्र कि दक्षिणोत्तरा गति उत्पन्न होती है। जिससे भूच्छाया और चन्द्र गोल के दो

स्थानों में उसके निवासार्थ की परिकल्पना की गयी है। इस स्थिति के कारण वही आच्छादक होता है, ऐसी प्रसिद्धि सर्वत्र है। पुनः गणित के द्वारा दक्षिण और सौम्य विक्षेप के कारण चन्द्र की याम्योत्तरा गति सिद्ध है। और वह दक्षिण और सौम्य विक्षेप पात के कारण उत्पन्न होता है। अतः चन्द्रपात ही लोक में राहु नाम से प्रसिद्ध है।यथा-

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्त:।
आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता ।।

तस्मिन् काले सान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहु:।
याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ।। (बृ.सं., 5/14,15)

वशिष्ठ संहिता में स्पष्ट उल्लिखित है कि वह राहु राक्षस होने के कारण सर्प के आकार से सदा भ्रमण करता हुआ भूगोल के आधे भाग में दर्पण सदृश सूर्य को ग्रहण करता है। और सम्पूर्ण पृथ्वी कि छाया उद्भूत होकर चन्द्रमा को ऊपर से ढक लेता है तथा सूर्य को ऊपर से आच्छादित करता है। पश्चिम भाग से आकर शीघ्र चन्द्रमा को ग्रहण करता है।

राहुरसौ दनुजत्वाद्भुजगाकारेण गृह्णाति।
भूगोलाधोभागे दर्पणसदृशे रवौ सदा भ्रमति ।। (व.सं.,9/5,6)

2.2.3 पर्व-भेद एवं उनके फल

पर्व भेद- आचार्य वराहमिहिर के अनुसार कल्पादि से छः-छः मास की वृद्धि करके पर्व होते हैं। उनमें सात पर्व कहे गए हैं। ये सात पर्व क्रमशः- ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम हैं। उनके क्रम से देवता ब्रह्मादि ही हैं अर्थात् जो सात पर्व कहे गए हैं वही तत्तद नाम के अनुरूप पर्वों के स्वामी होते हैं। इनका आनयन गणित सिद्ध है। यथा-

षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशा: सप्त देवता: क्रमशः।
ब्रह्माशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेया: ।। (बृ.सं., 5/19)

वशिष्ठ संहिता में गणित के द्वारा ज्ञान करके सृष्टयादि से इष्ट पर्व अर्थात् ग्रहण लगने के पर्व पर्यन्त,पर्व समूहों के सात स्वामी अर्थात् पर्वेश कहे गए हैं।

पर्वों के फल – पर्वों के भेद कहने के उपरान्त इन पर्वों के स्वामियों के फल को क्रमशः कहा जा रहा है। यदि ब्राह्म पर्व में ग्रहण हो तो ब्राह्मण और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य तथा धान्यों की वृद्धि होती है। चान्द्र पर्व में भी इसी तरह और पशुओं की उन्नति, कुशल, आरोग्य, धान्यों की वृद्धि, पण्डितों को पीड़ा तथा अनावृष्टि होती है। ऐन्द्र पर्व में राजाओं में विरोध, शारदीय धान्य का नाश और लोग अकुशल होते हैं। कौबेर पर्व में धनपतियों के धन की क्षति और सुभिक्ष होता है। वारुण पर्व में राजाओं का अशुभ, दूसरे लोगों का कुशल और धान्यों की वृद्धि होती है। आग्नेय पर्व को 'मित्र' भी कहते हैं, इसमें धान्य की वृद्धि, आरोग्य, अभय और वृष्टि होती है। याम्य पर्व में वर्षा का अभाव, दुर्भिक्ष और धान्यों का नाश होता है। इन सात पर्वों से भिन्न पर्व अशुभ फल देने वाले होते हैं। जैसे कि छः-छः मास वृद्धि करके सात पर्वेश कहे गए हैं, इनमें किसी समय उत्पातवश पाँच, साढ़े पाँच, साढ़े छः या सात मास आदि पर ही पर्व की उपस्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में पूर्वकथित ब्रह्मा आदि पर्व नहीं होते हैं। इनसे अतिरिक्त पर्वों में दुर्भिक्ष, मरनी और अनावृष्टि होती है। इस प्रसङ्ग में आचार्य वराहमिहिर

कहते हैं कि गणितागत ग्रहण काल से पूर्व या बाद में ग्रहण दिखलाई पड़े तो उसको क्रम से वेलाहीन एवं अतिवेल ग्रहण कहते हैं। वेलाहीन पर्व में मेघ के गर्भ का नाश, शस्त्रकोप अर्थात् युद्ध और अतिवेल पर्व में पुष्प-फल का नाश, भय और धान्यों का नाश होता है।

2.2.4 ग्रस्तोदित और ग्रस्तास्त ग्रहण-फल विमर्श

यदि ग्रस्त सूर्य और चन्द्र का उदय या अस्त हो तो क्रम से शारदीय धान्य और राजा का नाश करता है। आशय यह है कि ग्रस्त चंद्र का उदय या अस्त हो तो शारदीय धान्य का और ग्रस्त सूर्य का उदय या अस्त हो तो राजा का नाश होता है। सर्वग्रस्त सूर्य और चन्द्र यदि पाप ग्रह से देखे जाते हों तो दुर्भिक्ष और मरकी देते हैं। जैसा कि बृहत्संहिता में भी कहा गया है –

ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ।
सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमकरदौ पापसंदृष्टौ ।। (बृ.सं., 5/27)

उदय से अस्तमय तक सप्ताकाश भाग में ग्रस्त सूर्य और चन्द्र के फल को भी आचार्य वराहमिहिर ने विस्तार से वर्णित किया है। यदि अर्द्धोदित चन्द्र और सूर्य ग्रस्त हो तो निषाद जाति का और समस्त यज्ञों का नाश करता है। दिनमान या रात्रिमान को सात जगह विभक्त करने पर युग का प्रथम आदि खांश मान होता है।

इनमें प्रत्येक खांश मान में स्पर्श और मोक्ष होने पर फल यह होता है कि यदि युग के प्रथम खांश में उदित चन्द्र या सूर्य ग्रस्त होता हो तो अग्नि से जीविका चलाने वाले, गुणी, ब्राह्मण और आश्रमवासियों का नाश करता है। द्वितीय खांश में किसान, पाखण्डी, व्यापारी, क्षत्रिय और सेनापति का नाश करता है। तृतीय खांश में चित्र बनाने वाले, शूद्र, म्लेच्छ जाति और मन्त्रियों का नाश करता है। चतुर्थ खांश में राजा और मध्य देश का नाश करता है तथा अन्नों के मूल्य में समानता देता है। पञ्चम खांश में चतुष्पद, मन्त्री, अंतःपुर और वैश्यों का नाश करता है। षष्ठ खांश में स्त्री और शूद्रों का नाश करता है। सप्तम खांश में अर्थात् अस्तकाल में चोर और गुहा में निवास करने वालों का नाश करता है।जिस खांश में ग्रहण का मोक्ष होता है, उस खांश में तत्तद् व्यक्तियों के लिए कथित अशुभ फल नहीं होकर शुभ फल होता है।

2.2.5 अयन और दिशागत ग्रहण-फल विमर्श

उत्तर और दक्षिण भेद से अयन दो प्रकार के होते हैं। मकरादि छः राशियों में सूर्य जब संचरण करता है तब उत्तर अयन होता है। तथा कर्कादि छः राशियों में सूर्य का संचरण होने पर दक्षिण अयन होता है। द्विविध अयन भेद एवं दिशा भेद से ग्रहण होने पर उसके फल को यहाँ प्रतिपादित किया जा रहा है। यदि उत्तरायण में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों का नाश करता है। दक्षिणायन में वैश्य और शूद्रों का नाश करता है। प्रदक्षिणक्रम से उत्तर आदि दिशाओं (उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम) में राहु दिखाई दे तो क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करता है।विदिशा- ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य कोण में स्थित राहु म्लेच्छ जाति, यायी और अग्नि से जीविका चलाने वाले का नाश करता है। दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम दिशाओं के लिए पुनः विशेष फल आचार्य वराहमिहिर ने कहा है। यदि दक्षिण दिशा में राहु दिखाई दे तो जलचर और हाथियों का नाश करता है। उत्तर दिशा में दिखाई दे तो गाय-बैलों का नाश करता है। पूर्व में दिखाई दे तो भूमि को जल से पूर्ण करता है तथा पश्चिम में दिखाई दे तो किसान, भृत्य और बीजों का नाश करता है।

द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान् दक्षिणायने हन्ति।
राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादिन्॥ (बृ.सं., 5/32)

2.3 द्वादशराशिगत ग्रस्त चन्द्रार्क फल कथन

मेषादि द्वादश राशियों में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण होने पर उसका क्या शुभाशुभ फल होगा? इसका क्रम से द्वादशराशिगत विचार करते हैं। राशिचक्र में सर्वप्रथम मेष राशि का क्रम आता है। अतः सर्वप्रथम मेष राशिगत सूर्य या चन्द्र ग्रहण के फल का विचार करते हैं। तदुपरान्त क्रम से अन्य राशियों में ग्रहण के फल का विचार करेंगे।

मेषराशिगत फल – मेषराशि में ग्रहण फल को वर्णित करते हुये बृहत्संहिता में कहा गया है कि मेष राशि में सूर्य या चन्द्र ग्रहण होने पर पञ्जाब, कलिङ्ग, शूरसेन, कम्बोज, औड्रदेश, किरात, शस्त्र से जीवन चलाने वाले और अग्नि से जीविका चलाने वाले लोगों को पीड़ित करता है।

वृषराशिगत फल – वृष राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो वह गौ को पालन करने वाले, चतुष्पदों और पूजनीय मनुष्यों को पीड़ित करता है।

मिथुनराशिगत फल – यदि मिथुन राशि में सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो तो उत्तम स्त्री, राजा, राजा के समान मंत्री आदि, प्राणधारी अन्य जीव, चित्र, नृत्य, गीत और वाद्य को जानने वाले, यमुना नदी के तट पर निवास करने वाले, धीर मनुष्य, मध्य देश – साकेत,मिथिला, चम्पा, कौशाम्बी, कौशकी, अहि क्षेत्र, गया, विन्ध्य क्षेत्र आदि और सुह्य देश में निवास करने वाले लोगों को पीड़ित करता है।

कर्कराशिगत फल – यदि कर्क राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो तो अहीर जाति, म्लेच्छ जाति, दक्षिण देश का राजवंश, बाहुयुद्ध जानने वाले, मत्स्य, कुरु, शक और पञ्जाब देश में निवास करने वाले और अंगहीन मनुष्यों को पीड़ित करता है।

सिंह-कन्या राशिगत फल – यदि सिंह राशि में ग्रहण हो तो म्लेच्छ जातियों का समूह, पर्वत विशेष में निवास करने वाले, बलवान् जन्तु, राजा और राजा के समान तथा वन में निवास करने वाले मनुष्य प्रभावित होते हैं। यदि कन्या राशि में ग्रहण हो तो धान्य, कवि, लेखक, गायक, पत्थर से आजीविका चलाने वाले, त्रिपुर नामक देश और धान्ययुत प्रदेश इन सबका नाश करता है।

तुला-वृश्चिक राशिगत फल – यदि तुला राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो अवन्ती देश में वास करने वाले, पश्चिम समुद्र के निकट रहने वाले, सज्जन, व्यापारी, दशार्ण, मरु और कच्छ क्षेत्र में रहने वाले लोगों का नाश करता है। यदि वृश्चिक राशि में ग्रहण हो तो उदुम्बर, मद्र और चोल देश में निवास करने वाले मनुष्य, वृक्ष, युद्ध करने वाले मनुष्य, कठोर शस्त्र धरण करने वाले लोगों का नाश करता है।

धनु-मकर राशिगत फल – यदि धनु राशि में ग्रहण हो तो मन्त्री, प्रधान मनुष्य, घोड़ा, मिथिला में निवास करने वाले मनुष्य, वैद्य, व्यापारी, कठोर अस्त्र को चलाने वाले लोगों का नाश करता है। यदि मकर राशि में ग्रहण हो तो मछली, मन्त्रियों का कुल, नीच कर्म करने वाले मनुष्य, मंत्र और औषध को जानने वाले, वृद्ध, शास्त्र से आजीविका चलाने वाले लोगों का नाश करता है।

कुम्भ-मीन राशिगत फल – यदि कुम्भ राशि में ग्रहण हो तो पहाड़ी मनुष्य, पाश्चात्य देश में रहने वाले मनुष्य, बोझा ढोने वाले, चोर, अहीर, दरद देश में रहने वाले, प्रधान मनुष्य, सिंह नगर, बर्बर देश में रहने वाले मनुष्य इन सबका नाश करता है।

यदि मीन राशि में स्थित सूर्य या चन्द्र का ग्रहण हो तो समुद्र के तीर और जल में उत्पन्न हुये द्रव्य, जंगली, मनुष्य, बुद्धिमान्, जल के विक्रय से जीवन-यात्रा चलाने वाले मनुष्य इयान सबका नाश करता है। द्रष्टव्य-(बृ.सं.,5/35-42)

2.4 ग्रास-भेद एवं तत्फल विचार

संहिता ग्रंथों में दस प्रकार के ग्रास कहे गए हैं। सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्दन, आमर्द्द, आघ्रात, मध्यतम तथा तम। यथा-

सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहा: ।
अपसव्ये मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दस ग्रासा: ।। (बृ.सं., 5/42)

इन सभी दसों प्रकार के ग्रासों का फल भी विस्तार से संहिता ग्रन्थों के राहुचाराध्याय में कहा गया है। अतः क्रम से दसों ग्रासों का फल यहाँ पर कहा जा रहा है।

सव्यापसव्य ग्रास-फल – सव्य ग्रास का फल व्याख्यायित करते हुये आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं कि यदि ग्रहण के समय में सूर्य या चन्द्र के सव्य अर्थात् दक्षिण भाग में होकर राहु गमन करे तो संसार जल से पूर्ण, हर्षित और भय रहित होता है।

इसी प्रकार अपसव्य(वाम भाग) में होकर राहु गमन करे तो राजा और चोरों को पीड़ित करते हुये प्रजा का नाश करता है।

लेह-ग्रसन ग्रास फल – यदि सूर्य या चन्द्रबिम्ब को जिह्वा के समान राहु चाटता हो तो 'लेह' नाम का ग्रास होता है। इसमें पृथ्वी हर्षित, संपूर्ण प्राणियों से युत और जल से पूर्ण होती है। यदि सूर्य या चन्द्र बिम्ब के तृतीयांश, चतुर्थांश अथवा अर्धांश राहु से ग्रसित होता हो तो 'ग्रसन' नामक ग्रास होता है। इसमें अत्यधिक ऐश्वर्यशाली नृप का धननाश होता है तथा धनाढ्य देश में रहने वाले को पीड़ा होती है।

निरोध-अवमर्दन ग्रास फल – यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल को चारों तरफ से ग्रसित कर राहु मध्य-प्रदेश में पिण्डाकार होकर स्थित हो तो 'निरोध' ग्रास होता है। यह भूमिस्थ सभी प्राणियों को आनन्द देने वाला होता है। यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के सम्पूर्ण बिम्ब को आच्छादित कर राहु बहुत काल तक स्थिर रहे तो 'अवमर्द' नामक ग्रास होता है। यह प्रधान राजा और देश का नाश करता है।

आरोहण-आघ्रात ग्रास फल – यदि सूर्य या चन्द्र ग्रहण के बाद उसी क्षण में पुनः राहु दिखाई दे तो 'आरोहण' नामक ग्रास होता है। यह राजाओं में परस्पर संघर्ष उत्पन्न कर भयंकर स्थिति लाता है। यदि वाष्पयुत निःश्वासवायु से मलिन दर्पण कि तरह सूर्य या चंद्रमण्डल का एक देश दिखाई दे तो 'आघ्रात' नामक ग्रास होता है। यह वृष्टि और प्राणियों की वृद्धि करता है।

मध्यतमस-तमोऽन्त्य ग्रास फल – यदि छाद्य बिम्ब का मध्य भाग राहु से आच्छादित हो और चारों ओर निर्मल वातावरण हो तो 'मध्यतम' नामक ग्रास होता है। यह मध्य देश का

नाश और पेट की बीमारी उत्पन्न करता है। यदि सूर्य या चन्द्रमण्डल के प्रान्त भाग में अधिक और मध्य भाग में थोड़ा राहु दृष्टिगोचर हो तो 'तमोऽन्त्य' नामक ग्रास होता है। इसमें धान्यों को ईति का और प्राणियों को चोर का भय होता है। द्रष्टव्य-(बृ.सं., 5/44-52)

2.5 विविधवर्णगत राहु का फल विमर्श

यदि सूर्य या चन्द्र के ग्रहणकाल में राहु का वर्ण श्वेत हो तो क्षेम, सुभिक्ष और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। अग्नि के समान वर्ण हो तो अग्निभय और अग्नि से जीवन यात्रा चलाने वाले लोहार, सोनार आदि को पीड़ा होती है। हरित वर्ण हो तो रोगों की वृद्धि और ईतियों के द्वारा धान्यों का नाश होता है। पीला हो तो जल्दी चलने वाले जानवर ऊँट आदि और म्लेच्छ जाति का नाश तथा दुर्भिक्ष होता है। किंचित् लोहित वर्ण हो तो दुर्भिक्ष,वर्षा का अभाव और पक्षियों को पीड़ा होती है। धूम्र वर्ण हो तो क्षेम, सुभिक्ष और थोड़ी वृष्टि होती है। कबूतर के समान लाल, कपिल और श्याम वर्ण हो तो क्षुधा और दुर्भिक्ष का भय होता है। कबूतर के समान अथवा कृष्ण वर्ण हो तो शूद्रों के लिए रोग देने वाला होता है। निर्मल मणि की तरह पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का नाश और सुभिक्ष करने वाला होता है। अग्निज्वाला की तरह दिखाई दे तो अग्नि का भय होता है। गेरू के समान दिखाई दे तो युद्ध होता है। यदि दूर्वादल की तरह श्याम वर्ण या हल्दी की तरह पीत वर्ण का दिखाई दे तो मरकी पड़ती है। यदि पाटल पुष्प की तरह हो तो वज्र गिरने का भय होता है। यदि पांशु (धूलि) या विलोहित(मिश्रित) वर्ण का राहु दृष्टिगोचर हो तो क्षत्रियों का और वृष्टि का नाश करने वाला होता है। द्रष्टव्य- (बृ.सं., 5/53-59)

2.6 ग्रस्त भौमादि पञ्च ग्रहों का फल कथन

सूर्य या चन्द्र के साथ एक राशि में अल्पांशान्तर पर होकर कुजादि ग्रहों का यदि शरभाव हो तो वे ग्रस्त कहे जाते हैं। इस प्रकार मङ्गल आदि पाँच ग्रहों का ग्रस्त होने पर फल कथन अलग अलग कहा गया है।

ग्रस्त मङ्गल फल – यदि मङ्गल ग्रस्त हो तो अवन्ती देश में स्थित मनुष्य, कावेरी, नर्मदा नदी के तीर पर रहने वाले एवं गर्वयुत राजाओं को पीड़ित करता है।यथा-

अवन्तिका जनपदा: कावेरीनर्मदातटाश्रयिण: ।
दृप्ताश्च मनुजपतय: पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ (बृ.सं., 5/64)

ग्रस्त बुध फल – यदि बुध ग्रस्त हो तो अंतर्वेदी(गङ्गा-यमुना के बीच का देश), सरयू, नेपाल, पूर्वी समुद्र, सोन नदी, स्त्री, राजा, योद्धा, बालक और विद्वान्, इन सबका नाश करता है।

ग्रस्त गुरु फल – यदि गुरु ग्रस्त हो तो पंडित, राजा, मन्त्री, हस्ती, घोड़ा, सिन्धु नदी के तट पर रहने वाले तथा उत्तर दिशा में रहने वाले इन सबका नाश करता है।

ग्रस्त शुक्र फल – यदि शुक्र ग्रस्त हो तो दाशेरक , कश्मीर, यौधेय और शिबी देश में स्थित मनुष्य,स्त्री तथा मन्त्रियों का नाश करता है।

ग्रस्त शनि फल – यदि शनैश्चर ग्रस्त हो तो मरुभूमि, पुष्कर और सौराष्ट्र देश के

निवासी जन, अर्बुद पर्वत पर निवास करने वाले मनुष्य, निकृष्ट जाति के मनुष्य, गोस्वामी, पारियात्र पर्वत पर वास करने वाले, इन सबका नाश करता है।

2.7 चैत्रादि द्वादशमासगत ग्रहण फल विवेचन

कार्तिक मास- यदि कार्तिक मास की अमावस्या में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो अग्नि से आजीविका चलाने वाले, मगध देश में रहने वाले पूर्व दिशा के राजा, कोशल, कल्माष, शूरसेन और काशी में रहने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं। साथ ही मन्त्री, भृत्यों के साथ कलिङ्ग देश के राजा का नाश करता है एवं क्षत्रियों को संतप्त करता है। साथ ही संसार में क्षेम और सुभिक्ष देता है।

मार्गशीर्ष मास – यदि मार्गशीर्ष मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो कश्मीर, कौशल और पुंड्र देश में रहने वाले, वन के जन्तु, पश्चिम देशवासी, सोमरस का पान करने वाले लोगों का नाश करता है तथा संसार में सुवृष्टि, क्षेम और सुभिक्ष करता है।

पौष मास – यदि पौष मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों में उपद्रव, सैन्धव, कुकुर और विदेह देशवासियों का नाश होता है तथा संसार में थोड़ी वृष्टि, भय और दुर्भिक्ष होता है।

माघ मास – यदि माघ मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो माता-पिता के भक्त, वशिष्ठ गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण, स्वाध्याय और धर्म में निरत, हाथी, घोड़ा, वङ्ग, अङ्ग और काशी देश में रहने वाले मनुष्य पीड़ित होते हैं तथा संसार में किसानों की इच्छा के अनुकूल वृष्टि होती है।

फाल्गुन मास - यदि फाल्गुन मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो बंगाल, अश्मक, अवन्ती और मेकल देश में रहने वाले, नाचने वाले, धान्य, उत्तम स्त्री, धनुष बनाने वाले शिल्पी, क्षत्रिय, तपस्वी आदि संतप्त होते हैं।

चैत्र मास – यदि चैत्र मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो चित्रकार, लेखक, गायक, वेश्या, वेद को जानने वाले , सोना बेचने वाले, पौंड्र, औड्र, कैकय, और अश्मक देश में रहने वाले संतप्त होते हैं। संसार में कहीं वृष्टि और कहीं वृष्टि नहीं होती है।

वैशाख मास – यदि वैशाख मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो कपास, तिल और मूंग को नष्ट करता है। इक्ष्वाकु, यौधेय और कलिङ्ग देश में उपद्रव होता है किन्तु संसार में सुभिक्ष होता है।

ज्येष्ठ मास - यदि ज्येष्ठ मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो राजा, ब्राह्मण, राजपत्नी,धान्य, वृष्टि, महागण, उत्तर दिशा में रहने वाले मनुष्य, साल्व देश वासी और निषाद इन सबकों नष्ट करता है।

आषाढ़ मास - यदि आषाढ मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो वापी, कूप, तालाब के तट पर रहने वाले मनुष्य, नदी का प्रवाह, फल-मूल खाकर समय यापन करने वाले, गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द और चीन देश का नाश करता है तथा संसार में कहीं-कहीं वृष्टि होती है।

श्रावण मास - यदि श्रावण मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र, गान्धार, मध्य देश घोड़ा, गदहा तथा शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्न का नाश करता है।

भाद्रपद मास – यदि भाद्रपद मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो कलिङ्ग, मगध, सौराष्ट्र, म्लेच्छ, सुवीर, दरद और अश्मक इन देशों का तथा स्त्रियों के गर्भों को नष्ट करता है और संसार में सुभिक्ष होता है।

आश्विन मास – यदि आश्विन मास की अमा में सूर्य ग्रहण और पूर्णिमा में चन्द्र ग्रहण हो तो कम्बोज, चीन और यवन देश में रहने वाले, शल्य चिकित्सक, बाह्लीक, सिन्धु तट, अनार्त और पौंड्र देश में रहने वाले, वैद्य तथा किरात इन सबकों नष्ट करता है तथा संसार में अधिक सुभिक्ष होता है।

2.8 चन्द्रार्क मोक्ष प्रकार, भेदलक्षण एवं तत्फल विमर्श

दक्षिण हनु, वाम हनु, दक्षिण कुक्षि, वाम कुक्षि, दक्षिण पायु, वाम पायु, संछर्दन, जरण, मध्य विदरण एवं अन्त्य विदरण ये दस प्रकार के सूर्य और चन्द्र के मोक्ष होते हैं। यथा-

हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्विः संछर्दनं च जरणं च ।
मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥ (बृ.सं., 5/81)

दश प्रकार के सूर्य और चंद्र के मोक्ष को कहने के उपरान्त तत्तद् मोक्ष के भेदलक्षण तथा फल को यहाँ व्याख्यायित किया जा रहा है।

दक्षिण हनुभेद लक्षण एवं फल – यदि चंद्र के ग्रहण में अग्निकोण में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् अग्निकोण में मोक्ष हो तो दक्षिण हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें धान्य का नाश, मुख का रोग, राजा को पीड़ा और सुवृष्टि होती है।

वाम हनुभेद लक्षण एवं फल – यदि ईशान कोण में होकर राहु निवर्तित हो अर्थात् ईशान कोण में मोक्ष हो तो वाम हनुभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुमार को भय, मुख रोग, शस्त्र भय और सुभिक्ष होता है।

दक्षिण कुक्षि भेदलक्षण एवं फल – यदि चन्द्र ग्रहण में दक्षिण पार्श्व में मोक्ष हो तो दक्षिण कुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें राजकुमारों को पीड़ा और दक्षिण दिशा में स्थित शत्रुओं में लड़ाई होती है।

वाम कुक्षि भेदलक्षण एवं फल – यदि ग्रहण काल में उत्तर की ओर मोक्ष हो तो वाम कुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है। इसमें स्त्रियों के गर्भों का नाश तथा मध्यम रूप से धान्य होता है।

दक्षिणवाम पायुभेद लक्षण एवं फल – यदि ग्रहण काल में नैऋत्य और वायव्य कोण में राहु दृष्टिगोचर हो तो क्रम से दक्षिण पायुभेद और उत्तर(वाम) पायुभेद नामक मोक्ष होता है। दक्षिण पायुभेद में गुदा और लिंग में रोग तथा थोड़ी वृष्टि और उत्तर पायुभेद में राजपत्नी का नाश होता है।

संछर्दन लक्षण एवं फल – यदि चन्द्र बिम्ब के पूर्व भाग से स्पर्श करके राहु उसी दिशा से निकलता हो तो संछर्दन नामक मोक्ष होता है। यह मोक्ष संसार में क्षेम, धान्य और संतोष देने वाला होता है।

जरण लक्षण एवं फल – यदि चन्द्र बिम्ब के पूर्व भाग में स्पर्श और पश्चिम भाग में मोक्ष होता हो तो जरण नामक मोक्ष होता है।इसमें क्षुधा और युद्ध के भय से उद्विग्न होकर मनुष्य शरण को

प्राप्त नहीं करता है अर्थात् उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं होता है।

मध्यविदरण लक्षण एवं फल – यदि ग्रहण के प्रारंभ काल में ही मण्डल के मध्य भाग में प्रकाश प्रतीत हो तो मध्य विदरण नामक मोक्ष होता है। यह राजा की अपनी सेनाओं में ही परस्पर क्षोभ उत्पन्न करने वाला, सुभिक्ष और थोड़ी वृष्टि देने वाला होता है।

अन्त्यविदरण लक्षण और फल - यदि ग्रहण काल में चन्द्र के बिम्ब-प्रांत भाग निर्मल और मध्य भाग में अधिक श्यामता हो तो अन्त्य विदरण नामक मोक्ष होता है। इसमें मध्य देश और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का नाश होता है।

2.9 सारांश

राहुचार नामक इस इकाई में राहु संचरण के द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों का वर्णन किया गया, जिसका सम्यक्तया अध्ययन आपने किया ।सर्वप्रथम उस पौराणिक कथा का उल्लेख किया गया है, जिसमें यह वर्णित किया गया कि राहु को किस प्रकार भगवान् विष्णु ने आठवाँ ग्रह का स्थान दिया। वही राहु पर्व-पर्व पर चन्द्रमा और सूर्य को ग्रसता है। इस इकाई में राहुकृत ग्रहण के स्वरूप को वर्णित करते हुये कहा गया है कि भूगोल के अधो भाग में दर्पण के सदृश्य राहु सदा भ्रमण करता है। राक्षस होने के कारण यही राहु सर्प कि आकृति से सूर्य और चंद्र को आच्छादित करता है। यह राहु प्रत्येक ग्रहण के पर्व पर सात प्रकार के मण्डलों में दृष्टिगोचर होता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि किसी भी एक मास में अधिकतम सात ही ग्रहण हो सकते हैं। षाण्मासिक पर्व भेद को बताया गया है, जो सात प्रकार के होते हैं। इन सात पर्वों के नाम के अनुसार उनके फल को भी क्रमशः प्रतिपादित किया गया है। जैसे ब्राह्म पर्व में द्विज, गोप आदि की वृद्धि होती है। सौम्य पर्व में सज्जनों की हानि तथा वृष्टि नहीं होती है। इन्द्र पर्व में शारदीय फसल का विनाश होता है। जबकि कुबेर पर्व में धनी लोगों की धन की हानि तथा अतिवृष्टि होती है। वरुण पर्व में ग्रहण होने पर संपूर्ण लोगों की वृद्धि परंतु राजाओं की हानि होती है। इस प्रकार सभी पर्वों का फल वर्णित किया गया है। आगे कहा गया है की यदि एक मास में सूर्य और चन्द्र ग्रहण दोनों हो तो आतंक, महँगाई का भय एवं राजाओं में परस्पर कलह जानना चाहिए। अयन और दिशा भेद से ग्रहण के फल को प्रतिपादित किया गया है। जैसे - उत्तरायण में यदि सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो तो ब्राह्मण, सज्जन और राजा की हानि होती है जबकि दक्षिणायन में ग्रहण होने पर शारदीय फसल की हानि होती है। ग्रस्तोदय तथा ग्रस्तास्त ग्रहण होने पर रोग का भय होता है। दस प्रकार के ग्रास भी कहे गए हैं। सव्य, अपसव्य, लेह, ग्रसन, निरोध, अवमर्दन, आमर्द्द, आघ्रात, मध्यतम तथा तम । इन सभी प्रकार के ग्रासों का फल विस्तार से वर्णित किया गया है। विविध वर्णों के अनुसार राहु के शुभाशुभ फल को प्रकाशित किया गया है। तदुपरान्त कुजादि पाँच ग्रहों का ग्रस्त फल भी बताया गया है ।पुनः चैत्रादि बारह मासों में होने वाले सूर्य और चन्द्र ग्रहण के फलों को विस्तार से बताया गया है। इसी प्रकार से ग्रहण के मोक्ष प्रकार ,भेदलक्षण एवं फल को व्याख्यायित किया गया है।

2.10 शब्दावली

सैंहिकेय – सिंहिका नामक राक्षसी का पुत्र।

असित – कृष्ण वर्ण।

तम – अन्धकार।

भुजङ्ग – सर्प।

अनियतचार – अनियमित गति।

उपराग – ग्रहण।

शर – ग्रह स्थान और ग्रह बिम्ब का अन्तर कदम्बप्रोतवृत्त में मध्यम शर होता है। उसे ही शर कहते हैं।

ग्राहक – जो ग्रहण करता है, वह ग्राहक है ।जैसे – चन्द्र ग्रहण में भूभा (राहु) चंद्र को ग्रहण करता है, अतः भूभा ग्राहक/ ग्रहिका है।

दुर्भिक्ष – अकाल। पृथ्वी पर अन्न का अभाव।

सुभिक्ष – अन्न की अधिकता। प्रचुर मात्रा में अन्न उत्पन्न होना।

आवरण – किसी वस्तु को ऊपर से या चारों ओर से ढकने वाली कोई वस्तु।

सव्य - दक्षिण भाग।

अपसव्य - वाम भाग ।

2.11 बोधप्रश्न

1. राहुकृत ग्रहण-स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. पर्व-भेद एवं उनके फलों को व्याख्यायित कीजिए।
3. चैत्रादि द्वादश मासों में होने वाले ग्रहण के शुभाशुभ फल पर प्रकाश डालिए।
4. विविध वर्णों के अनुसार राहु के शुभाशुभ फल को स्पष्ट कीजिए।
5. अयन एवं दिशा भेद से ग्रहण फल पर प्रकाश डालिए।
6. सूर्य और चन्द्रमा के मोक्ष प्रकार तथा उनके फल को प्रकाशित कीजिए।

2.12 सन्दर्भ ग्रंथ

1. बृहत्संहिता, व्याख्याकार- पं. अच्युतानन्द झा,चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी 2014।
2. भारतीय ज्योतिष, मूल लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, अनुवादक- झारखंडी शिवनाथ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990।
3. बृहत्संहिता, (भट्टोत्पल टीका सहित), सं. सं. वि. वि., वाराणसी, 1997।
4. वशिष्ठ संहिता, संपादक- प्रो. गिरिजा शङ्कर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2016।
5. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,दिल्ली,2014।

इकाई 3 केतुचार

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 केतुचार : संक्षिप्त परिचय

- 3.2.1 केतु का स्वरूप-लक्षण
- 3.2.2 शुभाशुभ केतु लक्षण

3.3 विविध प्रकार के केतु की संख्या एवं उनके फल

3.4 विविध भेद से केतु के लक्षण

- 3.4.1 वसु-अस्थि केतु लक्षण
- 3.4.2 कपालकेतु लक्षण
- 3.4.3 रौद्रकेतु लक्षण
- 3.4.4 चलकेतु लक्षण
- 3.4.5 श्वेतकेतु लक्षण
- 3.4.6 रश्मिकेतु लक्षण
- 3.4.7 ध्रुवकेतु लक्षण
- 3.4.8 कुमुदकेतु लक्षण
- 3.4.9 मणिकेतु लक्षण
- 3.4.10 जलकेतु लक्षण
- 3.4.11 भवकेतु लक्षण
- 3.4.12 पद्मकेतु लक्षण
- 3.4.13 आवर्तकेतु लक्षण
- 3.4.14 संवर्तकेतु लक्षण

3.5 नक्षत्रगत केतु लक्षण

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 बोध प्रश्न

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- केतु के स्वरूप को रेखांकित करने में कुशल होंगे।
- शुभाशुभ केतु के लक्षण को प्रतिपादित कर सकेंगे।

- मत-मतान्तरों से केतु की संख्या और उनके फल को व्याख्यायित करने में समर्थ होंगे।
- विविध भेद से केतु के लक्षण को प्रकाशित करने में दक्ष होंगे।
- नक्षत्रगत केतु के लक्षण को निरूपित करने में कुशल होंगे।

3.1 प्रस्तावना

संहिता ग्रन्थों के केतुचाराध्याय में केतुचार के द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों को बताया गया है। सर्वप्रथम केतु के स्वरूप को प्रतिपादित किया गया है। तदुपरान्त त्रिविध केतु के लक्षण तथा शुभाशुभ केतु के लक्षण को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। मतांतर से एक सौ एक प्रकार के केतुओं, दूसरे एक सहस्र और नारद मुनि के अनुसार अनेक केवल एक ही केतु कहे गए हैं। एक सौ एक केतु कहने के अनन्तर आठ सौ निन्यानबे प्रकार के केतुओं के लक्षण और उनके फल बताये गए हैं। अस्थि, कपाल, रौद्र, चल, श्वेत, रश्मि, ध्रुव, कुमुद, मणि, जल, भव, पद्म, आवर्त और संवर्त ये विविध भेद से केतुओं के लक्षण को आचार्यों ने विस्तार से वर्णित किया है। नक्षत्रों के अनुसार केतुचार के शुभाशुभ फलों को भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है।प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप इन्हीं महत्वपूर्ण विषयों का अध्ययन करेंगे।

3.2 केतुचार : संक्षिप्त परिचय

केतु एक छाया ग्रह है। केतु ग्रह का उदय और अस्त गणित के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। मूलतः दिव्य, अंतरिक्ष और भौम ये तीन प्रकार के केतु कहे गए हैं। केतुओं की कुल संख्या एक हजार एक सौ एक है। केतु का फलादेश उसके उदय, अस्त, अवस्थान, स्पर्श और धूम्रता आदि के द्वारा अवगत किया जाता है। केतु जितने दिन दिखलाई देता है, उतने मास तक उसके फल का परिपाक होता है। जो केतु निर्मल, चिकना, सरल, रुचिर और शुक्लवर्ण का होकर उदित होता है, वह सुभिक्ष और सुखदायक होता है। इसके विपरीत रूप वाले केतु शुभदायक नहीं होते हैं। इन्द्रधनुष के सदृश अनेक वर्ण वाले केतु अत्यन्त शुभकारक होते हैं। हार, मणि या सुवर्ण के समान रूप धारण करने वाले और चोटीदार केतु पूर्व या पश्चिम में दृष्टिगोचर हो तो सूर्य से उत्पन्न कहलाते हैं और इनकी संख्या पच्चीस है। इसी प्रकार अग्निकोण में दिखाई देने वाले अग्नि से उत्पन्न माने जाते हैं और इनकी भी संख्या पच्चीस है। दक्षिण दिशा में दिखाई देने वाले यम केतु कहलाते हैं। ईशान कोण में दिखाई देने वाले पृथ्वी से उत्पन्न माने जाते हैं। उत्तर दिशा में दृष्टिगत होने वाले केतु चन्द्रमा के पुत्र होते हैं। इस प्रकार एक सौ एक केतुओं का वर्णन प्राप्त होता है। इन केतुओं के उदय-अस्त का फल विभिन्न देशों या स्थानों पर होता है,इसका विस्तार से वर्णन संहिता ज्योतिष में किया गया है।तदुपरांत शुभ केतुओं को छोडकर अन्य केतुओं से धूपित या स्पृष्ट नक्षत्र होने पर जिन –जिन राजाओं का नाश होता है ,उनका भी उल्लेख प्राप्त होता है।

3.2.1 केतु का स्वरूप-लक्षण

केतु के स्वरूप-लक्षण को प्रतिपादित करते हुये बृहत्संहिता नामक ग्रन्थ में आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं कि केतु के उदयास्त को गणित के द्वारा नहीं जान सकते, क्योंकि दिव्य अर्थात् आकाश में उत्पन्न, अन्तरिक्ष अर्थात् ग्रह और नक्षत्र स्थान से भिन्न स्थान में उत्पन्न और भौम अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न तीन प्रकार के केतु होते हैं। उत्पातरूप होने के कारण गणित से हम

इनका उदय और अस्त नहीं ज्ञात कर सकते है। खद्योत, पिशाचालय, मणि, रत्न, काँच आदि को छोडकर अग्नि से भिन्न जिस-किसी भी स्थान में अग्नि के समान दिखाई पड़े, वहाँ केतु का रूप जानना चाहिए।

दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम्।
दिव्यान्तरिक्षभौमस्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥ (बृ.सं., अ. 11, श्लो.2)

दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम त्रिविध केतुओं के लक्षण को प्रतिपादित करते हुये बृहत्संहिता में कहा गया है कि यदि ध्वज, शस्त्र, गृह, वृक्ष, घोड़ा, हाथी आदि में जिस केतु का दर्शन हो, वह अन्तरिक्ष केतु होता है ।जैसे- परिवेष, इन्द्रधनुष, उल्का, गन्धर्व नगर, निर्घात ये सभी अन्तरिक्ष विकार से उत्पन्न होते हैं। ये मध्यम फल देते हैं। ग्रह-नक्षत्रों से उत्पन्न आकाश में जो केतु दृष्टिगोचर हो, वह दिव्य केतु होता है। ये महाफल देते हैं। इन दोनों से भिन्न भूमि पर जो दृश्यमान हो वह भौम केतु होते हैं। ये चर, स्थिर तथा वस्तु सम्भव होते हैं। ये अधम फल देने वाले होते हैं। वर्ष, मास एवं पक्ष में क्रमशः ये अपने-अपने परिणाम देते हैं। उदय और अस्त के समय ये केतु सुभिक्ष और सुख देने वाले होते हैं। इस प्रकार केतु के त्रिविध भेद का लक्षण और फल प्राप्त होते हैं।

ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते।
दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥ (बृ.सं., अ. 11, श्लो.4)

केतुचार में जिन-जिन केतुओं के नाम निर्दिष्ट किया गया है उनके फलपाक कितने दिन में होंगे ? इस विषय में संहिता ग्रन्थों में कहा गया है कि जितने दिन तक केतु दिखाई दे, तो अस्त के 45 दिन बाद से उतने मास तक और जितने मास तक देखने में आए, तो अस्त के 45 दिन बाद से उतने वर्ष तक अपना फल देता है।

3.2.2 शुभाशुभ केतु के लक्षण

विविध प्रकार के केतुओं में कुछ शुभ और कुछ अशुभ केतु कहे गए हैं। शुभ केतु का लक्षण वर्णित करते हुये आचार्य वराहमिहिर ने कहा है कि यदि छोटा, पतला, निर्मल, स्निग्ध, सरल, थोड़े ही दिनों में अदृश्य, श्वेत और उदय काल में वृष्टि हो तो वह केतु सुभिक्ष और सुख देने वाला होता है। यथा-

ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरचिरसंस्थितः शुक्लः ।
उदितोऽथवाभिवृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः ॥ (बृ.सं., अ. 11, श्लो.8)

जिसका आशय है, ह्रस्वः = छोटा, तनुः = स्थूल, प्रसन्नः = निर्मल, स्निग्धः = सुस्नेह, ऋजुः = स्पष्ट, अचिरसंस्थितः = शीघ्र अदर्शन होना, शुक्लः = श्वेत वर्ण, अथवा उदितः = उदित मात्र से, वृष्टः = वृष्टि हो तो, इस प्रकार का केतु, सुभिक्ष और सौख्यावहः = सुख को देने वाला होता है।

उपरोक्त लक्षण से भिन्न लक्षण वाले केतु अशुभ फलदायक होते हैं तथा इन्द्रधनुष के समान, दो या तीन शिखा वाले केतु विशेषकर अशुभ फल देते हैं।

उक्तविपरीतरूपो न शुभकारो धूमकेतुरुत्पन्नः।
इन्द्रायुद्धाकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥ (बृ.सं., अ. 11, श्लो.9)

3.3 विविध प्रकार के केतुओं की संख्या तथा उनके फल

संहिताचार्यों ने विविध प्रकार के केतुओं की संख्या को प्रतिपादित किया है। पराशर आदि मुनियों ने एक सौ एक केतुओं को कहा है। पराशर मुनि के मत में- **"शतमेकोत्तरं केतूनां भवति"**। गर्गादि सहस्र केतुओं की संख्या कहते हैं। जैसे- **"आगन्तूनां सहस्रं स्याद्"** ये गर्ग मुनि का वचन है। नारद मुनि के अनुसार- **"एक: केतु: प्रकीर्तित:"** अर्थात् दिव्य,अंतरिक्ष और भौम गत एक ही केतु है। बृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने स्पष्ट कहा है कि एक या अनेक केतु हों, इसका मुझसे कोई प्रयोजन नहीं है , प्रत्युत उदय, अस्त, उसके स्थान ग्रह या नक्षत्र के साथ स्पर्श और आधूम-श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णों के द्वारा मुझे केवल फल कहना है। अत एव उन्होंने सर्वप्रथम मतांतर से एक सौ एक केतुओं की संख्या और उनके फल को वर्णित किया है । तदुपरांत अन्य प्रकार से केतुओं कि संख्या और उनके फल को व्याख्यायित किया है।

मतान्तर द्वारा केतु-संख्या- विभिन्न आचार्यों के मतों को उपस्थापित करने के उपरान्त सूर्यपुत्र केतु पच्चीस प्रकार के, अग्निपुत्र केतु भी पच्चीस प्रकार के , यमपुत्र केतु पच्चीस प्रकार के, भूमिपुत्र केतु बाईस प्रकार के , चन्द्रपुत्र केतु तीन प्रकार के तथा ब्रह्मा पुत्र केतु एक प्रकार के होते हैं,इस प्रकार आचार्य वराहमिहिर ने एक सौ एक प्रकार के केतुओं की संख्या एवं उनके फल को विस्तार पूर्वक वर्णित किया है।

सूर्यपुत्र केतु- मुक्ताहार, मणि और सुवर्ण के समान वर्ण वाले शिखा सहित केतु पच्चीस प्रकार के होते हैं। ये सूर्य पुत्र कहे गए हैं। ये पूर्व और पश्चिम दिशा में दृश्य होते हैं।इनमें से एक का भी यदि दर्शन हो तो राजाओं में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है।

अग्निपुत्र केतु – अग्नि के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु होते हैं।ये तोता, अग्नि, काला वर्ण, पुष्प, लाख या रक्त के सदृश वर्ण वाले होते हैं, जो अग्नि कोण में दृश्य होते हैं। इनका दर्शन होने पर अग्नि का भय होता है।

यमपुत्र केतु – वक्र शिखा वाले, रुक्ष और काले यम के पुत्र पच्चीस प्रकार के केतु होते हैं। ये दक्षिण दिशा में उदित होते हैं। इनके दर्शन से धरती पर मरी पड़ती है।

भूमिपुत्र केतु – वृत्त की आकृति का, दर्पण के समान, शिखा रहित, किरणों से युक्त, जल और तेल के समान बाईस प्रकार के भूमिपुत्र केतु होते हैं। ये ईशान कोण में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने से पृथ्वी पर अकाल पड़ता है।

चन्द्रपुत्र केतु – चंद्रमा के किरणों के समान, हिम, चाँदी या कुमुद के पुष्प के समान वर्ण वाले तीन प्रकार के केतु कहे गए हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं। इनका दर्शन होने पर सुभिक्ष होता है।

ब्रह्मापुत्र केतु – ब्रह्मा का पुत्र, तीन शिखा वाला, तीन वर्णों से युक्त एक प्रकार का केतु है। यह सभी दिशाओं में उदित होता है। जब इसका दर्शन होता है तो, उस समय सभी प्रदेशों का नाश होता है।

इस प्रकार एक सौ एक केतुओं के लक्षण कहे गए हैं। इसके अनन्तर आठ सौ निन्यानबे केतुओं के स्पष्ट लक्षण आचार्य वराहमिहिर ने प्रतिपादित किया है।

शुक्रपुत्र केतु – विस्तीर्ण, शुक्ल और निर्मल शरीर वाले चौरासी प्रकार के शुक्रपुत्र केतु हैं। ये उत्तर और ईशान कोण में उदित होते हैं। इनके दर्शन से अनिष्ट फल की प्राप्ति होती है।

शनिपुत्र केतु – शनि के पुत्र साठ प्रकार के केतु होते हैं। ये निर्मल, कान्ति से युक्त तथा दो शिखा वाले होते हैं। ये कनक संज्ञक और सभी दिशाओं में उदित होते हैं। इनके दर्शन से अत्यधिक अनिष्ट फल प्राप्त होते हैं।

गुरुपुत्र केतु – श्वेत, एक तारे वाले, शिखा रहित, निर्मल शरीर वाले पैंसठ प्रकार के केतु हैं। ये विकच संज्ञक और दक्षिण दिशा में उदित होते हैं। इनके दर्शन से भी पाप फल प्राप्त होते हैं।

बुधपुत्र केतु – लम्बे, श्वेत, अस्पष्ट, सूक्ष्म शरीर वाले इक्यावन बुधपुत्र केतु हैं।तस्कर संज्ञक ये सभी दिशाओं में उदित होते हैं। इनके दर्शन से भी अशुभ फल होता है।

भौमपुत्र केतु – रक्त या अग्नि के सदृश, तीन शिखा वाले और तीन तारें वाले साठ प्रकार के मङ्गलपुत्र केतु हैं। ये उत्तर दिशा में उदित होते हैं और इनके दर्शन से अनिष्ट फल प्राप्त होता है।

राहुपुत्र केतु – राहु के पुत्र तामस और कीलक संज्ञक तैंतीस प्रकार के केतु हैं। ये सूर्य और चन्द्र मण्डल में दिखाई देते हैं। ये सूर्य मण्डल में अशुभ तथा चन्द्र मण्डल में प्रविष्ट होने पर शुभ फल देते हैं।

अग्निपुत्र केतु – अतिशय जाज्वल्यमान मूर्ति वाले अग्नि के पुत्र एक सौ बाईस प्रकार के केतु हैं। ये विश्वरूप संज्ञक और भयंकर अग्नि भय देने वाले होते हैं।

वायुपुत्र केतु – श्याम वर्ण युत लोहित वर्ण, तारों से रहित, चामर के समान, विस्तृत किरण और रुक्ष सतहत्तर वायुपुत्र केतु होते हैं। ये सभी अरुण संज्ञक और पाप फल देते हैं।

प्रजापति और ब्रह्मा पुत्र केतु – तारापुंज के समान प्रजापति के पुत्र आठ प्रकार के केतु होते हैं। ये गणक संज्ञक और अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। साथ ही चतुर्भुजाकार ब्रह्मा के पुत्र चतुरस्रसंज्ञक एक सौ चार केतु हैं। ये भी अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। ये दोनों प्रकार के केतु सभी दिशाओं में उदित होते हैं।

वरुणपुत्र केतु – वंश और लता के समान आकृति वाले कङ्क और चन्द्र के समान कान्ति वाले वरुण के पुत्र बत्तीस प्रकार के होते हैं। ये भी सभी दिशाओ में उदित होते हैं तथा इनके दर्शन से भी अशुभ फल प्राप्त होता है।

कालपुत्र केतु – काल के पुत्र कबंध संज्ञक, छिन्न शिर वाले पुरुष के समान आकृति वाले और अस्पष्ट तारा वाले छियानबे प्रकार के केतु हैं। ये सभी दिशाओं में उदित होते हैं तथा इनके दर्शन होने पर पुंड्र देश में शुभ और अन्य देश में अशुभ फल होता है।

विदिशापुत्र केतु – विदिशा के नव पुत्र कहे गए हैं। ये धवल वर्ण, विस्तृत और एक तारा वाले हैं। इनका दर्शन अशुभकारक होता है।

इस प्रकार कुल एक सहस्र केतु होते हैं। अब आगे इनकी विभिन्न भेद से विशेषताओं को बताया जा रहा है। दृष्ट भेद से केतु के लक्षण और फल को विस्तार से आचार्यों ने संहिता ग्रंथों में प्रतिपादित किया है।

3.4 विविध भेद से केतु के लक्षण

सहस्र केतुओं में कुछ दृष्टिगोचर होते हैं और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। जो दिखाई देते हैं उनके लक्षणों को यहाँ प्रतिपादित किया जा रहा है। सर्वप्रथम आचार्य वराहमिहिर ने दृष्टिगत होने वाले केतुओं में वसा नामक केतु का लक्षण कहा है। तदुपरान्त अस्थिकेतु, कपाल, रौद्र, चल, श्वेत, रश्मि, ध्रुव, कुमुद, मणि, जल, भव, पद्म, आवर्त और संवर्त केतुओं का लक्षण क्रम से वर्णित किया है। अतः क्रमवार उक्त केतुओं के विशेष लक्षण का अध्ययन यहाँ करेंगे।

3.4.1 वसु-अस्थि केतु लक्षण

वसा नामक केतु पश्चिम दिशा में उदित होता है। इसका स्वरूप उत्तर की ओर विस्तृत, स्थूल और निर्मल होता है। इसके उदय होने पर पृथ्वी पर मरी पड़ती है तथा उत्तम सुभिक्ष होता है।

उपरोक्त वसा केतु की तरह उदग् और आयत आदि लक्षणों से युक्त और रुक्ष अस्थि नामक केतु होता है। यह दुर्भिक्ष देने वाला होता है तथा वसा केतु के लक्षणों से युत, निर्मल, और पूर्व दिशा में उदित होने वाला शस्त्र केतु होता है। यह शस्त्र युद्ध कराने वाला और मनुष्यों को मारने वाला होता है।

तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः स तु रूक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्तः।
स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय ॥ बृ.सं., 11/30

3.4.2 कपालकेतु लक्षण

कपाल नामक केतु अमावस्या तिथि में पूर्व दिशा में उदित होता है और आकाश के अर्द्ध भाग में विचरण करने वाला कपाल केतु है। किरणों की कान्ति धूम्र वर्ण की होती है। इसका दर्शन होने से धरती पर अकाल, मरकी और अवृष्टि और रोग उत्पन्न होते हैं।

दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मिशिखः।
प्राङ्गनभसोऽर्द्धविचारी क्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ॥ बृ.सं., 11/31

3.4.3 रौद्रकेतु लक्षण

रौद्र नामक केतु पूर्व और अग्निकोण में उदित होने वाला तीन शिखा युत, कपिश, रूक्ष या ताम्र के सदृश किरण वाला और आकाश के तीन भाग में गमन करने वाला होता है। यह भी उपरोक्त कपाल केतु की तरह ही फल देता है। अर्थात् इसका भी दर्शन होने पर पृथ्वी पर दुर्भिक्ष, अवृष्टि, मरकी और रोग उत्पन्न होते हैं।

प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यामरूक्षताम्रार्चिः।
नभसस्त्रिगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः ॥ बृ.सं., 11/32

3.4.4 चलकेतु लक्षण

पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, दक्षिण दिशा में एक अङ्गुल उच्छ्रित शिखा वाला, जैसे-जैसे उत्तर दिशा की ओर जाय वैसे-वैसे दीर्घ होने वाला, सप्तर्षि, ध्रुवतारा और अभिजित् नक्षत्र को स्पर्श करके लौटने वाला और आकाश के अर्द्ध भाग में जाकर दक्षिण दिशा में अस्त होने

वाला चल नामक केतु है। इसका दर्शन होने से प्रयाग से अवन्ती तक के देश, पुष्करारण्य नामक स्थान और उत्तर दिशा में देविका नदी तक के देश का नाश होता है, परंतु विशेषकर मध्य देश का नाश होता है। साथ ही अन्य देशों का भी रोग और दुर्भिक्ष के द्वारा नाश होता है। इसका फल दर्शन काल से लेकर दश मास तक होता है और किसी का मत है कि दर्शन काल से लेकर अट्ठारह मास पर्यन्त फल प्राप्त होता है।

अपरस्यां चलकेतु: शिखया याम्याग्रयाङ्गुलोच्छ्रितया।
गच्छेद्यथा यथोदक् तथा यथा दैर्घ्यमायाती॥ बृ.सं., 11/33

3.4.5 श्वेतकेतु लक्षण

श्वेत केतु पूर्व दिशा में अर्द्धरात्रि के समय दृश्य होने वाला और दक्षिण स्थित शिखा वाला है तथा अन्य 'क' संज्ञक केतु गाड़ी के जुए के समान आकृति वाला और पश्चिम दिशा में अस्त होने वाला है। यदि निर्मल कान्ति होकर उक्त केतु सात दिन तक दिखाई दे तो सुभिक्ष और कल्याण करते हैं। यदि सात दिन से अधिक में दिखाई दे तो दश वर्ष तक शस्त्र के कोप से मनुष्यों को पीड़ित करता है। श्वेत केतु का अन्य लक्षण प्रतिपादित करते हुये आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि श्वेत नामक केतु जटा के सदृश्य, रुक्ष, कपिश और आकाश के तीन भाग तक जाकर बायीं तरफ से होकर लौट आता है। इसका दर्शन होने से प्रजा का तृतीयांश मात्र शेष रह जाता है और शेष भाग नष्ट हो जाते हैं।

श्वेत इति जटाकारो रूक्ष: श्यावो वियत्त्रिभागगत:।
विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेष: प्रजा: कुरुते॥ बृ.सं., 11/39

3.4.6 रश्मिकेतु लक्षण

रश्मि केतु धूम्रवर्ण की शिखा वाला और कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होने पर दिखाई देने वाला होता है। इसका दर्शन होने से यह श्वेत केतु के समान ही फल देता है। यथा-

आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थ:।
ज्ञेय: स रश्मिकेतु: श्वेतसमानं फलं धत्ते॥ बृ.सं., 11/40

3.4.7 ध्रुवकेतु लक्षण

अनिश्चित गमन, प्रमाण, वर्ण और आकृति वाला, सभी दिशाओं में दिखाई देने वाला, दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम भेद से तीन प्रकार का होने वाला, निर्मल तथा शुभफल देने वाला ध्रुवकेतु है।यह ध्रुवकेतु नाश होने वाले राजाओं के सेनाङ्ग (अश्व, लगाम आदि) में, नाश होने वाले देशों के गृह, वृक्ष और पर्वत में तथा नाश होने वाले गृहस्थों के उपकरण द्रव्य में दिखाई देता है।

ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक्।
दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफल:॥

सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुशैलेषु चापिदेशानाम्।
गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति॥ बृ.सं., 11/41,42

3.4.8 कुमुदकेतु लक्षण

कुमुद पुष्प की तरह कान्ति वाला, पश्चिम दिशा में उदित होने वाला, पूर्व की तरफ शिखा वाला और केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला कुमुद केतु है।इसका दर्शन होने से दश वर्ष तक पृथ्वी पर सुभिक्ष होता है। यथा-

कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्शिखो निशामेकाम् ।
दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ॥ बृ.सं., 11/43

3.4.9 मणिकेतु लक्षण

पश्चिम दिशा में एक प्रहर मात्र शेष रात्रि में एक बार दिखाई देने वाला और दुग्ध धारा की तरह स्पष्ट शिखा वाला मणि केतु है। यह केतु उदय काल से ही साढ़े चार महीने तक सुभिक्ष और अधिकतर नकुल आदि क्षुद्र जन्तुओं की उत्पत्ति करता है। जैसा कि बृहत्संहिता में भी कहा गया है-

सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः ।
ऋज्वी शिखास्य शुक्ला स्तनोद्गता क्षीरधारेव ॥

उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान् ।
प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ॥ बृ.सं., 11/44,45

3.4.10 जलकेतु लक्षण

पश्चिम दिशा में दिखाई देने वाला, निर्मल और पश्चिमोन्नत शिखा वाला जल केतु है। यह उदित हो तो नव मास तक सुभिक्ष और लोगों का कुशल करता है।

जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयापरेण चोन्नतया ।
नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ॥ बृ.सं., 11/46

3.4.11 भवकेतु लक्षण

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला, सूक्ष्म तारा से युत और सिंह की पूँछ की तरह दक्षिणावर्त शिखा से युत भव केतु है। यह निर्मल मूर्ति का होकर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष और रूक्ष मूर्ति का होकर जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक प्राणान्तक रोग की उत्पत्ति करता है।

भवकेतुरेकरात्रं दृश्यःप्राक् सुक्ष्मतारकःस्निग्धः ।
हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया ॥

यावत् एव मुहूर्तान् दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान् ।
तावदतुलं सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ॥ बृ.सं., 11/47,48

3.4.12 पद्मकेतु लक्षण

पूर्व दिशा में केवल एक रात्रि में दिखाई देने वाला मृणाल की तरह गौर पद्म केतु है। यह उदित

हो तो सात वर्ष तक सुभिक्ष और लोगों में आनन्द-मंगल करता है।

अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम्।
सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि॥ बृ.सं., 11/49

3.4.13 आवर्तकेतु लक्षण

पश्चिम दिशा रात्र्यर्ध समय उदित होने वाला, दक्षिणस्थ शिखा वाला, रक्तवर्ण, निर्मल शरीर वाला आवर्त केतु है।जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने मास तक सुभिक्ष करता है। जैसे-

आवर्त इति निशार्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः।
यावत्क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ॥ बृ.सं., 11/50

3.4.14 संवर्तकेतु लक्षण

पश्चिम दिशा में सन्ध्या काल में आकाश के तीसरे भाग तक जाकर दिखाई देने वाला धूम्र या ताम्र वर्ण की तीन शिखा वाला संवर्त्त केतु है। यह जितने क्षण तक दिखाई देता है, उतने वर्ष तक युद्ध के द्वारा राजाओं का नाश करता है। साथ ही उदय कालिक नक्षत्र को पीड़ित करता है। यथा-

पश्चात् संध्याकाले संवर्तो नाम धूम्रताम्रशिखः ।
आक्रम्य वियत्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः॥ बृ.सं., 11/51

3.5 नक्षत्रगत केतु-लक्षण

आचार्य वराहमिहिर ने सत्ताइस नक्षत्रों के अनुसार केतु के स्पर्श होने पर शुभाशुभ फलों को स्थान विशेष, देश विशेष अथवा क्षेत्र विशेष के राजाओं के लिए कहा है। जिसका प्रतिपादन यहाँ किया जा रहा है। शुभ केतुओं को छोड़कर अन्य केतुओं से धूपित या स्पृष्ट नक्षत्र होने पर जिन-जिन राजाओं का नाश होता है, उनको अब कहते हैं। यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट अश्विनी नक्षत्र हो तो अश्मक देश के अधिपति,भरणी नक्षत्र हो तो किरातों के अधिपति, कृत्तिका हो तो कलिङ्ग देश के अधिपति और रोहिणी नक्षत्र हो तो शूरसेन देश के स्वामी का नाश करता है।

अश्विन्यामश्मकपं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात्।
बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनपतिम्॥ बृ.सं., 11/54

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मृगशिरा नक्षत्र हो तो उशीनर देश के स्वामी, आर्द्रा नक्षत्र हो तो मत्स्य देश के स्वामी, पुनर्वसु नक्षत्र हो तो अश्मक देश के स्वामी और पुष्य नक्षत्र हो तो मगध के अधिपति का नाश करता है। यथा -

औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु।
आदित्येऽश्मकनाथान् पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ॥ बृ.सं., 11/55

यदि केतु से धूपित आश्लेषा नक्षत्र हो तो असिकेश्वर, मघा नक्षत्र हो तो अंग देश के अधिपति, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र हो तो पाण्ड्य देश के अधिपति, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो तो उज्जयिनी के

पति और हस्त नक्षत्र हो तो दण्डक वन के स्वामी का नाश होता है।

असिकेशं भौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये।
औज्जयिनिकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट चित्रा नक्षत्र हो तो कुरुक्षेत्र के अधिपति का मरण केतूपघातज्ञ पण्डित को कहना चाहिये तथा स्वाती नक्षत्र हो तो काश्मीर और कम्बोज देश के स्वामी का नाश कहना चाहिये।

चित्रासुकुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेतज्ज्ञः।
काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट विशाखा नक्षत्र हो तो अलकाधिपति, अनुराधा नक्षत्र हो तो पुण्ड्राधिपति और ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो सार्वभौम राजा का नाश होता है।

इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु।
मैत्रे पुण्ड्राधिपतिः ज्येष्ठासु च सार्वभौमवधः ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट मूल नक्षत्र हो तो आन्ध्र देश और मद्रक देश के अधिपति,

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो तो काशी के स्वामी और उत्तराषाढा नक्षत्र हो तो यौधेयक, अर्जुनायन, शिवि और चैद्य देश के अधिपति का नाश होता है।

मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति।
यौधेयकार्जुनायनशिविचैद्यान् वैश्वदेवे च ॥

यदि केतु से धूपित या स्पृष्ट श्रवण नक्षत्र हो तो केकय देश के स्वामी, धनिष्ठा नक्षत्र हो तो पञ्जाब के स्वामी, शतभिषा नक्षत्र हो तो सिंहल देश के स्वामी, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र हो तो नैमिषारण्य के स्वामी और रेवती नक्षत्र हो तो किरातों के स्वामी का नाश होता है।

हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वाङ्गम् ।
नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः॥

जो केतु उल्का से पीड़ित हो, वह शुभ करने वाला होता है। जो वृष्टि युक्त हो, वह अतिशय शुभ करने वाला होता है, लेकिन वही केतु चोल, अवगाण, सितहूण और चीन देश में स्थित मनुष्यों का अशुभ करने वाला होता है।

उल्काभिताडितशिख शिखी शिवः शिवतरोऽतिदृष्टो यः ।
अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनानाम्॥

केतु की शिखा जिस दिशा में नम्र अर्थात् झुका हो, जिस दिशा में फैलती हो या जिस नक्षत्र में स्पर्श करती हो, वहाँ पर स्थित अन्य भोगीजनों से भुक्त अत्यधिक पराक्रमों से निर्जित ग्रामों को उसी तरह राजा लोग भोगते हैं, जैसे गरुड़ दिव्य प्रभाव से नष्ट उत्कृष्ट सर्पों के अंगों का भोग करता है।

नम्रायतःशिखिशिखाभिमृता यतो वा ऋक्षं च यत्स्पृशति तत्कथितांश्च देशान्।
दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान् भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान्॥

3.6 सारांश

आकाश,अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर उत्पन्न तीन प्रकार के केतु संसार में होते हैं। उत्पातरूप होने के कारण गणितीय पद्धति से इनका उदय और अस्त का विचार नहीं किया जा सकता है। संहिता ग्रन्थों में एक सौ एक भेद वाले केतु अथवा एक सहस्र भेद वाले केतु का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसका विस्तार से वर्णन इस इकाई में किया गया है। शुभ और अशुभ केतु का फल बताया गया जिसमें कहा गया है कि शुभ केतु सुभिक्ष और सुखकारक होते हैं तथा अशुभ केतु ठीक उसका विपरीत फल देते हैं। विविध प्रकार के केतु की संख्या एवं उसके लक्षण भी वर्णित किए गए हैं। जिसके अंतर्गत पच्चीस प्रकार के सूर्य पुत्र केतु के लक्षण और उनके फल, पच्चीस प्रकार के अग्नि पुत्र केतु एवं यम पुत्र केतु के लक्षण और उनके फल, बाईस प्रकार के भूमि पुत्र केतु के लक्षण और फल, तीन प्रकार के चंद्र पुत्र केतु के लक्षण और फल और एक प्रकार के ब्रह्मा पुत्र केतु के लक्षण और फल को सम्यक्तया व्याख्यायित किया गया है।तदुपरान्त आठ सौ निन्यानबे प्रकार के केतुओं का स्पष्ट लक्षण और फल बताए गए हैं। चौरासी प्रकार के शुक्र पुत्र केतु के लक्षण और उनके फल, साठ प्रकार के शनि पुत्र केतु, पैंसठ प्रकार के गुरु पुत्र केतु, इक्यावन प्रकार के बुध पुत्र केतु, साठ प्रकार के भौम पुत्र केतु, तैंतीस प्रकार के राहु पुत्र केतु, एक सौ बीस प्रकार के अग्नि पुत्र केतु, सतहत्तर प्रकार के वायु पुत्र केतु , प्रजापति के आठ और ब्रह्मा के एक सौ चार प्रकार के केतु, बत्तीस प्रकार के वरुण पुत्र केतु, छियानबे प्रकार के काल पुत्र तथा नव संख्यक विदिशाओं के पुत्र केतु के लक्षण और उनके शुभाशुभ फलों का विस्तृत विवेचना इस इकाई में की गई है। इस प्रकार सहस्र संख्या तुल्य विभिन्न प्रकार के केतुओं के उदय और अस्त का फल देश और स्थानों के अनुसार वर्णित किया गया है। उक्त समस्त केतुओं के मध्य कतिपय केतु आकाश में दिखाई देते हैं और कतिपय केतु दिखाई नहीं देते हैं। इस इकाई में दृष्टिगोचर होने वाले केतुओं यथा- अस्थि, शस्त्र, कपाल, रौद्र, चल, श्वेत, रश्मि, ध्रुव, कुमुद, मणि, जल, भाव, पद्म, आवर्त और संवर्त संज्ञक केतुओं के लक्षण-स्वरूप और फल को बताया गया है। अंत में केतु से स्पृष्ट नक्षत्रों के दृष्ट फल का भी प्रतिपादन स्पष्ट रूप से किया गया है। इन समस्त विषयों का अध्ययन आपने इस केतुचार नामक इकाई में किया।

3.7 शब्दावली

हुताश - अग्नि।

खद्योत - जुगनूँ।

पिशाचालय - यम का स्थान।

स्निग्ध - स्नेह युक्त।

ऋजु - स्पष्ट।

रविजा - सूर्य से उत्पन्न।

रुक्ष - रूखा, नीरस।

अन्वित - युक्त।

याम्य - दक्षिण।

सौम्य - उत्तर।

धवल - शुक्ल।

विपुल - अत्यधिक विशाल।

विकच - विकसित, केशहीन।

लोहित - लाल रंग का।

धूम्र - धूएँ के रंग का।

डमर - शस्त्र कलह।

वियत् - आकाश।

दैर्घ्य - विस्तार।

अश्मक देश - प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों में से एक था। एक मात्र दक्षिण में स्थित महाजनपद। इसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुरी थी। जो आज का पैठण शहर है।

अर्जुनायन - पंजाब या उत्तर-पूर्व राजस्थान का भाग।

यौधेय देश - झेलम और सिंधु नदी के मध्य का भाग।

शिवि देश - प्राचीन राजस्थान का एक जनपद।

मत्स्य देश - वर्तमान जयपुर और अलवर का क्षेत्र।

3.8 बोधप्रश्न

1. केतु के लक्षण-स्वरूप की विस्तृत विवेचना करें।
2. विभिन्न प्रकार के केतु की संख्या, लक्षण तथा उनके फलों को विस्तार से वर्णित कीजिए।
3. दृष्ट केतुओं के भेद एवं लक्षण को प्रतिपादित कीजिए ।
4. केतु द्वारा स्पृष्ट नक्षत्रों के फल को स्पष्ट कीजिए।

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बृहत्संहिता, व्याख्याकार- पं. अच्युतानन्द झा,चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी 2014।
2. भारतीय ज्योतिष, मूल लेखक – शंकर बालकृष्ण दीक्षित, अनुवादक- झारखंडी शिवनाथ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990।
3. बृहत्संहिता, (भट्टोत्पल टीका सहित), सं. सं. वि. वि., वाराणसी, 1997।
4. वशिष्ठ संहिता, संपादक- प्रो. गिरिजा शङ्कर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2016।
5. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,दिल्ली,2014।

इकाई 4 अगस्त्यचार

इकाई की संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अगस्त्यचार: संक्षिप्त परिचय

4.2.1 अगस्त्यमुनि वर्णन

4.3 समुद्रशोभा वर्णन

4.4 विन्ध्य वर्णन

4.5 अगस्त्योदयप्रभाव वर्णन

4.6 शरदृतु वर्णन

4.6.1 भूमिशोभा वर्णन

4.7 अगस्त्यप्राधान्य वर्णन

4.7.1 अगस्त्योदय लक्षण

4.7.2 अगस्त्य अर्घदानलक्षण

4.7.3 अर्घार्थ वस्तुवर्णन

4.7.4 अर्घ-फल

4.8 अगस्त्य का वर्णानुसार फल

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 बोधप्रश्न

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- अगस्त्य के प्रभाव का वर्णन करने में समर्थ होंगे।
- अगस्त्य के उदयगत प्रभावों को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- अगस्त्य के माहात्म्य का प्रतिपादन करने में कुशल होंगे।
- वर्णानुसार अगस्त्य के शुभाशुभ फल को रेखांकित करने में दक्ष होंगे।
- अगस्त्य के लिए अर्घ्यदान-लक्षण का विस्तृत विवेचन करने में समर्थ होंगे।

4.1 प्रस्तावना

संहिता ग्रंथों के अगस्त्यचाराध्याय में सर्वप्रथम अगस्त्य मुनि के प्रभावों का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् अगस्त्य मुनि की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। तदुपरान्त अगस्त्य मुनिकृत समुद्र की शोभा का, सूर्य के मार्ग रोकने वाले विंध्य पर्वत का, अगस्त्य के उदित होने पर उनके प्रभावों का तथा शरद् ऋतु का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् भूमि की शोभा की भी विवेचना की गई है। इसी क्रम में अगस्त्य मुनि के माहात्म्य का भी वर्णन प्राप्त होता है । अगस्त्य के उदय और अस्त का लक्षण, अगस्त्य मुनि के अर्घ और दान की विधि, दान में प्रयुक्त होने वाले अभीष्ट वस्तुओं का उल्लेख तथा दान से प्राप्त होने वाले फल का विशद् प्रतिपादन किया गया है। इसके अनन्तर चार वर्णों यथा- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अनुसार अगस्त्य के फल को बताया गया है। प्रस्तुत इकाई में आप इन्हीं महत्वपूर्ण विषयों का अध्ययन करेंगे।

4.2 अगस्त्यचार : संक्षिप्त परिचय

अगस्त्य एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे। ऋग्वेद में लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर काम पीड़ित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घड़े में हुई। इसी से इन्हें मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुंभज घटोद्- भव और कुम्भ सम्भव कहते हैं। पुराणों में इनके अगस्त्य नाम पड़ने की कथा यह लिखी है कि इन्होंने बढ़ते हुए विंध्य पर्वत को लिटा दिया। अतः इनका एक नाम विंध्यकूट भी है। पुराणों के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू में भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताब्धि भी कहलाते हैं। कहीं-कहीं पुराणों में इन्हें पुलस्य का पुत्र भी लिखा है, इस प्रकार विभिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। वेदों में भी अगस्त्य से संबंधित अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं,यथा -ऋग्वेद में इनकी अनेक ऋचाएँ है। खगोलीय स्थिति के अनुसार अगस्त्य एक तारा है, जो आकाश में दिखाई पड़ता है। अतः यह एक तारा या नक्षत्र का नाम है। यह भाद्रपद मास में सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है। इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे उत्तर के निवासियों को यह नहीं दिखाई देता। आकाश के स्थिर तारों में लुब्धक को छोड़कर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नहीं चमचमाता। यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है। तीसरी स्थिति एक प्रसिद्ध पेड़ के रूप में भी कहीं-कहीं उल्लेख मिलता है। यह पेड़ ऊँचा और घेरेदार होता है। इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं। इसके टेढ़े-मेढ़े फूल अर्धचंद्राकार, लाल और सफेद होते हैं। इसके छिलके का काढ़ा शीतल और औषधिकारक होते हैं।

आकाशीय स्थिति के अनुसार वर्षा ऋतु का समाप्ति और अगस्त्य तारे का उदय होना शरत् ऋतु का शुभागमन का द्योतक होता है। अगस्त्य तारा 'मिथुन राशि' के दक्षिण में 70 अंश की दूरी पर ''नौका मण्डल'' (Argo Navis) दिखाई देता है। इसका आकार बड़ा विस्तृत है। यह 40 अंश दक्षिण अक्षांश से 70 अंश दक्षिण अक्षांश तथा 85 अंश देशान्तर तक फैला है। इसे ''नौका पुंज'' (Argo या Argus) भी कहते हैं। इसी का सबसे चमकीला सितारा 'अगस्त्य' (Canopus) है, जो 75 अंश देशान्तर तथा 53 अंश दक्षिणी अक्षांश के पास स्थित है। यह प्रथम श्रेणी का तारा है जो सूर्य से 1900 गुना तेजस्वी है तथा पृथ्वी से 100 प्रकाश वर्ष दूर है। भारतीय ज्योतिषियों को प्राचीन काल से इसका ज्ञान था। महाभारत में नहुष को नाग कहा है,

जो बादलों के अर्थ में आया है। वेद में बादल का नाम 'अहि' है। वन पर्व में '**अगस्त्येन ततोभ्युक्तो ध्वंस सर्पेति वै रूषा'** अगस्त्य नक्षत्र (तारा) के उदय होते ही सर्परूपी जल का नाश हो जाता है। यह तारा अक्टूबर मास में सूर्यास्त के समय पूर्व में उदय होता है। भारत में यह समय वर्षा ऋतु की समाप्ति का है।अतः इसका उदय होना वर्षा के अन्त का सूचक है। तुलसी दास जी ने रामचरित मानस में भी लिखा है-

'उदित अगस्त्य पंथ जल शोषा। जिमि लोभहिं शोषे संतोषा।।'

ऋग्वेद में उसे सात किरणों को मारने वाला कहा है। इसका भारतीय वैज्ञानिक नाम 'क-नौत्तल' तथा पाश्चात्य वैज्ञानिक नाम Alpha Majoris है।

4.2.1 अगस्त्यमुनि वर्णन

अगस्त्य मुनि की विशेषताओं का वर्णन करते हुये आचार्य वराहमिहिर विरचित ग्रन्थ बृहत्संहिता के भट्टोत्पल टीका में लिखा है कि, सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये बढ़े हुये शिखर वाले विन्ध्याचल पर्वत को जिन्होंने रोक लिया, मुनियों के पेट को फाड़ने वाला और देवताओं के शत्रु वातापी राक्षस को जिन्होंने पचा डाला, समुद्र को जिन्होंने पी लिया और तपोरूप समुद्र से दक्षिण दिशा को जिन्होंने भूषित किया, जल राशि को निर्मल करने वाले उन अगस्त्य मुनि का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

भानोर्वर्त्यविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो
वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः ।

पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता
तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारः समासादयम् ।। बृ.सं.,भ. टी.,प्र.16

4.3 समुद्रशोभा वर्णन

समुद्र कि शोभा का वर्णन करते हुये आचार्य कहते हैं कि, पहले तत्क्षण जलप्रवाह से, मकर के नखों से उत्पाटित शिखर वाले पर्वतों से तथा परिमित रत्नों से युत मुकुट वाले देवताओं को तिरस्कार करने के लिये इधर-उधर अनेक पतित मुक्ताओं से मिश्रित श्रेष्ठमणि और रत्नों से युत जल प्रवाहों से समुद्र को जिन्होंने अतिशय सुन्दर बनाया। यथा-

समुद्रोऽन्तः शैलैर्मकरनखरोत्खातशिखरैः
कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः ।

पतन्मुक्तामिश्रः प्रवरमणिराम्बुनिवहैः
सुरान् प्रत्यादेष्टुं मितमुकुटरत्नानानिवपुरा ।। बृ.सं.,12/1

भावार्थ- येन = अगस्त्य मुनि ने, पुरा = पुरातन समय में, तोयोच्छित्त्या = जल प्रवाह से, सपदि = तत्क्षण ही, सुतराम् = अतिशय, रम्यः = सुन्दर. कृतः = बनाया, पुनः किन-किन विशेषताओं से युक्त करके सुन्दर बनाया, तो इस विषय में आगे कहते हैं, अन्तःशैलै: = जिसके मध्य में मैनाक प्रभृति पर्वतों से युत, पुनः किस प्रकार का तो, मकरनखरोत्खातशिखरै: = मकर के नख से उत्पाटित शिखर से युत, मितमुकुटरत्नानानि = परिमित रत्नों से युत मुकुट वाले ,सुरान् =

देवताओं को, प्रत्यादेष्टुम् = तिरस्कार करने के लिए, पतन्मुक्तामिश्रैः = अनेक पतित मुक्ताओं से मिश्रित, प्रवरमणिरत्नाम्बुनिवहैः = श्रेष्ठ मणि और रत्नों से युत जलप्रवाहों को अत्यधिक रमणीय बनाया।

इसके आगे प्रशंसा करते हुए आचार्य लिखते हैं कि, जिस अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने पर भी मणि, रत्न और प्रवालों से युत, वृक्ष तथा पंक्ति से पृथक् स्थित सर्पों से रहित पर्वतों के कारण समुद्र अतिशय शोभित हुआ है।

येन चाम्बुहरणेऽपि विद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः।
निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः सागरोऽधिकतरं विराजितः॥ बृ.स. 12/2

भावार्थ- येन = अगस्त्य मुनि के द्वारा, जलापहरणे = अपहृत जल वाला, होने पर, अपि = भी, सागरः = समुद्र, अधिकतरम् = अतिशय, विराजितः = शोभित है, कैः = किससे, भूधरैः = पर्वतों, विद्रुमैः = वृक्षों से रहित, समणिरत्नविद्रुमैः = मणि, रत्न और प्रवाल से युक्त, निर्गताः = निष्क्रांत, तदुरगैः = सर्पों से रहित, राजितः = सुशोभित है ।

पुनः आगे प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि अगस्त्य मुनि के द्वारा अपहृत जल वाला होने के कारण विपत्ति ग्रस्त होने पर भी समुद्र ने जलाभाव के कारण चञ्चल मत्स्य, जलहस्ती, सर्प तथा इधर-उधर बिखरे हुये रत्न और मणियों से सुशोभित होकर स्वर्ग की शोभा प्राप्त की।

प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकरो महोदधिः।
आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम्॥ बृ.सं.,12/3

भावार्थ- येन = अगस्त्य मुनि के द्वारा, महोदधि = समुद्र, आपदाम् = विपत्ति को पदगतोऽपि = प्राप्त होने पर भी, पीतसलिलः = पीत जल होने पर भी, अमरश्रियः = देवताओं की लक्ष्मी को, यापितः = प्राप्त किया, पुनः कीदृशः, जलाभावात् = जल के अभाव के कारण, प्रस्फुरन्तस्तिमयः = चंचल मछलियाँ, जलेभाः = जलहस्ती, और जिह्मगाः = सर्पों, रत्ननिकरः = रत्नों और मणियों के, क्षिप्तः = इधर-उधर बिखरे हुए होने पर भी इनसे सुशोभित है।

इसी प्रकार उसकी अन्य विशेषता को बताते हुये लिखते हैं कि जल नष्ट होने पर भी चलित मत्स्य, शुक्ति और शंख से युत समुद्र शरद्ऋतु में तरंग, श्वेत कुवलय और हंस से युत सरोवर की शोभा धारण करता है।

प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितःसलिलेऽपहृतेऽपि पतिः सरिताम्।
सतरङ्गसितोत्पलहंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचिम्॥ बृ.सं.,12/4

भावार्थ- सरिताम् = नदियों के, पतिः = स्वामी अर्थात् समुद्र, सलिले = जल अपहृत होने पर भी, शरदि = शरत् काल में, सरसः = दीप्ति को, बिभर्ती = धारण करता है , दीप्ति किस प्रकार की है तो, सतरङ्गाणि = तरंगों के साथ, सितोत्पलानि = श्वेत कमल, पुष्प विशेष को, हंसान् = हंसों को धारण करता है। पुनः समुद्र कैसा है, प्रचलिततिमिभिः = चलित मत्स्यों, शुक्तिजाः = सितोत्पल, शङ्खाः = सफेद शंखों से युत शोभा को धारण करता है।

इसी प्रसंग में आगे वर्णन प्राप्त होता है कि मत्स्यरूप मेघ, मणिरूप तारा, स्फटिकमणिरूप चन्द्र, जलाभावरूप शारदीय द्युति और सर्पों के फण पर स्थित मणि (चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि) के किरणरूप केतु ग्रह हैं, जिसमें ऐसे कुटिलगेश (समुद्र) को जिन्होंने बना दिया।

तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं स्फटिकचन्द्रमनम्बुशरद्द्युतिः ।
फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च चकार यः ॥ बृ.सं.,12/5

भावार्थ- यः = जो, कुटिलगेशम् = समुद्र को, तिमिसिताम्बुधरम् = मत्स्यरूप को, मणितारकम् = मणिरूप तारा, स्फटिकः = मणि विशेष रूप, चन्द्रः = चन्द्र, अनम्बु = जल के अभाव रूप, शरद्द्युतिः = शरत् ऋतु की कांति, फणिनः = सर्पों के, फणासु = सिर पर स्थित, उपलाः = मणि के, रश्मिः = किरणरूप, शिखिग्रहः = केतु हैं, वियत् = आकाश, इत्यादि से युक्त समुद्र को अगस्त्य मुनि ने अपने तपोबल से, चकार = बनाया। इस प्रकार अगस्त्य मुनि ने अपने तपस्या के बल पर समुद्र को सुशोभित किया।

4.4 विन्ध्य वर्णन

आचार्य वराहमिहिर ने विंध्य पर्वत की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये लिखते हैं कि सूर्य के मार्ग को रोकने के लिये उन्नत होने में कम्पायमान शृङ्ग होने से भयभीत, विद्याधर के कन्धे में सक्त और व्यग्र विद्याधरी गण से दिये हुये और विद्याधर के शरीर में लगे हुये कम्पायमान और अत्युन्नत ध्वजरूप वस्त्र से शोभित, हस्ती के मद से युक्त रक्त के आस्वादन से उत्पन्न सुगन्धि को खोजने में उद्यत भ्रमरगणों से युक्त शिर वाले मानो बाण पुष्पों से रचित शिरोमाला धारण करने वाले सिंहों से युक्त गुहागत निर्झर वाला, बढ़े हुये गजों से आकृष्ट होने पर कम्पित प्रफुल्लित वृक्षों पर चञ्चल और आनन्द से मधुर शब्द करते हुये भ्रमर पंक्ति वाले तथा वन के अश्व, भालू, व्याघ्र और वानरों से युत पर्वतों से मानो आकाश को उल्लिखित करता हुआ, निर्जन स्थान में मदन वृक्ष से युक्त होने के कारण मानो मदनातुर प्रिया-रेवा नदी से युक्त, देवताओं से सेवित उद्यान वाला तथा जलहारी, निराहारी, मूलाहारी, वाताहारी ब्राह्मण मुनियों से सेवित विन्ध्याचल है। इस पर्वत को जिन्होंने रोका, उन अगस्त्य मुनि के उदय के सम्बन्ध में आचार्य आगे कहते हैं।

दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्गमुद्भ्रान्तविद्याधरांसावासक्त-
प्रियाव्यग्रदत्ताङ्कदेहावलम्बाम्बरात्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैः शोभितम्।

करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारिद्विरेफावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान्-
बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान् धारयद्भिर्मृगेन्द्रः सनाथीकृतान्तर्दरीनिर्झरम्॥

4.5 अगस्त्योदयप्रभाव वर्णन

समुद्र की शोभा वर्णन करने के अनन्तर अगस्त्य के उदय होने पर उसके प्रभावों का वर्णन किया जा रहा है। आचार्य वराहमिहिर के अनुसार जिस तरह खलों की सङ्गति-रूप मल से दूषित हृदय वाला मनुष्य भी सज्जनों के दर्शन से निर्मल हृदय वाला हो जाता है, उसी तरह वर्षा ऋतु में कीचड़ मिला हुआ जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से निर्मल हो जाता है।

उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसमायोगमलप्रदूषितानि ।
हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्ति निर्मलानि ॥ बृ.सं.,12/7

भावार्थ- अगस्त्यनाम्नः मुनेः = अगस्त्य नामक मुनि के, उदये = उदय होने पर, कुसुमायोगमलप्रदूषितानि = वर्षा ऋतु में कीचड़ युत जल भी, निर्मलानि = शुद्ध, भवन्ति = हो

जाता है, किस प्रकार से निर्मल होता है,तो आगे कहते हैं कि, यथा = जिस प्रकार, सताम् = सज्जनों के, उदये = दर्शन होने पर, कु = कुत्सित अर्थात् खलों की, समायोग = संगति से, यत्मलम् = जो उसके पाप से, प्रदूषितानि = दूषित होता है,वह भी, पुनः स्वाभावात् = स्वभाव से निर्मल हो जाता है।

4.6 शरद्ऋतु वर्णन

अगस्त्य के उदय के प्रभाव का वर्णन करने के पश्चात् शरद् ऋतु का वर्णन प्रायशः आचार्यों ने किया है। इस प्रसङ्ग में आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं कि ताम्बूल से रक्त ओठों के मध्य विराजमान दन्त पंक्तिवाली, हास युत स्त्री की तरह दोनों पार्श्वों में स्थित लाल वर्ण के चक्रवाकों के मध्य शब्दायमान हंसों की पंक्तियों से युत नदियों के द्वारा शरद् ऋतु सुशोभित है।

पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपङ्क्तिम्।
ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव शरत्सहासा ॥ बृ.सं.,12/8

भावार्थ- शरत् = शरद् ऋतु, सहासा = हास-परिहास युक्त, योषेव = स्त्री सदृश, विभाति = शोभित है। कीदृशी योषा ? स्त्री कैसी है ? ताम्बूल-रक्तोत्कषिताग्रदन्ती = ताम्बूल से रक्त रंजित ओष्ठ के मध्य अग्र दाँतों वाली, शरत्कीदृशी ? पार्श्वद्वयाधिष्ठितम् = दोनों पार्श्व में स्थित, चक्रवाकै: = लोहित वर्ण के चक्रवाकों के बीच, सस्वनाया: = शब्दों से युक्त, हंसपङ्क्ते: = हंसों की पंक्तियों से युत, अपुष्णति = नदियों के जल से संपोषित होता हुआ शोभायमान हो रहा है।

आगे इस सन्दर्भ में कहते हैं कि भ्रमण करते हुये भ्रमर की पंक्तियों से भूषित, नील कमल के निकट स्थित श्वेत कमल से युत नदियों से शोभित शरद् मानो भ्रूलता के साथ कटाक्ष चलाने वाली मदनातुरा स्त्री की तरह शोभित है।

इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता शरद्भ्रमत्षट्पदपङ्क्तिभूषिता।
सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति सस्मरा ॥ बृ.सं.,12/9

भावार्थ- शरत् = शरत् ऋतु,सस्मरा = काम युक्त, विदग्धयोषेव = प्रौढ़ कन्या की भाँति, विभाति = शोभित है। पुनः कीदृशी ? सभ्रूलताक्षेपकटाक्षविक्षणा = भ्रूलता के साथ कटाक्ष चलाने वाली, शरत्कीदृशी ? इंदीवरम् = नीलोत्पल = नीलकमल, तस्य = उसके, आसन्ने = निकट में, ये सितोत्पल = जो श्वेत कमल हैं उनसे, अन्विता = संयुक्त, भ्रमत् = भ्रमण करते हुए, षट्पदा: = भ्रमरों के, पंक्ति: = पंक्तियों से, भूषिता = सुशोभित है।

पुनः शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन करते हुये आगे लिखते हैं कि तरङ्गरूप कङ्कण वाली वापीरूप कामिनी रात्री में मेघ के चले जाने से बढ़ी हुई चंद्रमा की शोभा को देखने के लिये मानो भ्रमर युक्त कुमुदरूप कृष्ण तारा से युक्त नेत्र को खोलती है।

इन्दो: पयोदविगमोपहितां द्रष्टुं तरङ्गवलया कुमुदं निशासु।
उन्मूलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म वापी विलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥ बृ.सं.,12/10

भावार्थ- इन्दो: = चन्द्रमा की, पयोदविगमात् = मेघों के चले जाने से, उपहिताम् = व्याप्त जो कान्ति है, ताम् = उसको, द्रष्टुम् = देखने के लिए, वापी = नलिनी, निशासु = रात्री में, कुमुदम् = कैरव, विलोचनम् = नेत्रों के समान विकसित होती है। वापी किदृशी ? तरंगवलया =

उर्मिसमूह रूप कंकण से युक्त, पुनः कीदृक् कुमुदम् ? अलिनिलीनदलम् = भ्रमरों से संलग्न, सुपक्ष्म = सुंदर पत्तों वाली, असितम् = कृष्ण वर्ण के, तारकान्तम् = तारा से युक्त है।

4.6.1 भूमिशोभा वर्णन

भूमि की शोभा का वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि अनेक प्रकार के विचित्र कमल, हंस, चक्रवाक, कारण्डव आदि से भूषित तड़ाग रूप हस्त के द्वारा पृथ्वी मानो अनेक रत्न, पुष्प और फलों से अगस्त्य मुनि को अर्घ्य देती है।

नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता ।
रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्धमगस्त्यनाम्ने ।। बृ.सं.,12/11

भावार्थ- भूः = भूमि, अगस्त्यनाम्ने = अगस्त्य नाम के मुनि को, अर्घम् = अर्घ यच्छति = देती है, कीदृशी भूः = भूमि कैसी है ? तो आगे इसकी विशेषता प्रकट करते हैं। नानाविचित्राः = अनेक प्रकार के विचित्र, अम्बुजाः = कमलादि, च = तथा, हंसकोककारण्डवाः = हंस, कोक, और कारण्डव पक्षियों से, पूर्णम् = भूषित, तडागरूप = सरोवर के सदृश, हस्ता = हाथों के द्वारा, प्रभूतै = पर्याप्त, रत्नैः = रत्नों, पुष्पैः = पुष्पों और फलैः = फलों से युक्त है। और इन वस्तुओं से युक्त होकर अगस्त्य को अर्घ देती है। इस प्रकार पृथ्वी की शोभा का वर्णन प्राप्त होता है। भूमि की विशेषता के उपरान्त अगस्त्य की प्रधानता का वर्णन किया जा रहा है।

4.7 अगस्त्य-प्राधान्य वर्णन

अगस्त्य की प्रधानता का उल्लेख करते हुये आचार्य वराहमिहिर ने स्वसंहिता ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है कि मेघों से परिवेष्टित मूर्ति वाले सर्पों के फणों से उत्पन्न विष रूप अग्नि से दूषित इन्द्र की आज्ञा से पतित जल भी अगस्त्य मुनि के दर्शन से श्रेयस्कर हो जाता है।

सलिलममरपाज्ञयोज्झितं यद् धनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजङ्गैः।
फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्टं भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ।। बृ.सं.,12/12

भावार्थ- अमरपः = इन्द्र की, आज्ञया = आज्ञा से, उज्झितम् = उत्पन्न, सलिलम् = जल, घनपरिवेष्टितमूर्तिभिः = मेघों से आच्छादित मूर्ति वाले, भुजङ्गैः = सर्पों के, फणिजनितम् = फण से उत्पन्न, विषाग्निः = विष रूपी अग्नि से, संप्रदुष्ट = सम्यक्तया दूषित होने पर भी , तत् = उस, अगस्त्यदर्शनेन = अगस्त्य के दर्शन मात्र से, शिवम् = श्रेयस्कर , भवति = हो जाता है।

पुनः वर्णित करते हुए लिखते हैं कि जिनका स्मरण करने मात्र से ही पाप नष्ट हो जाते हैं, उन वरुण के पुत्र अगस्त्य की स्तुति का फल कहाँ तक कहें। गर्ग आदि मुनियों के द्वारा जिस प्रकार उनकी अर्घ विधि कही गई है, उसी प्रकार राजाओं के हित के लिये मैं कहता हूँ।

स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः।
मुनिभिःकथितोऽस्ययथार्घविधिः कथयामितथैवनरेन्द्रहितम् ।। बृ.सं.,12/13

भावार्थ- वरूणाङ्गरुहः = वरुण के पुत्र = अगस्त्य मुनि, स्मरणादपि = स्मरण करने मात्र से ही = नाम संकीर्तन मात्र से ही, पापम् = पाप कर्म, अपा = दूर, कुरुते = हो जाते हैं। किमुत = उनकी स्तुति का फल कहाँ तक वर्णित किया जाए, अर्थात् अवर्णनीय है। मुनिभिः = गर्गादि मुनियों ने, यथा = जिस प्रकार से, अस्य = अगस्त्य की, अर्घविधि कही है, तथैव = वही विधि,

नरेन्द्रहितम् = राजाओं के हित के लिए, कथयामि = कहता हूँ।

4.7.1 अगस्त्योदय लक्षण

अगस्त्य का उदय आकाश में कब होता है तथा जानने की इसकी विधि क्या है ? इस सन्दर्भ में आचार्य वराहमिहिर का मत है कि गणित के द्वारा प्रत्येक देश में इनका दर्शन जानकर पण्डितों को कहना चाहिये। दर्शन सिंह राशि के तेईस अंश पर जब स्पष्ट सूर्य जाते हैं तब होता है।

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः।
तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य॥

और नक्षत्रों के अनुसार उदयास्त का विवेचन करते हुए आचार्य लिखते हैं कि यदि सूर्य हस्त नक्षत्र गत हो तो अगस्त्य को उदित जानना चाहिए और यदि सूर्य रोहिणी नक्षत्र गत हो तो अस्त जानना चाहिए। यथा-

"दृश्यते किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति"

4.7.2 अगस्त्य अर्घदानलक्षण

उदय का ज्ञान हो जाने के बाद अर्घदान की विधि को प्रतिपादित किया जा रहा है। सूर्य के किरणों से रात्रि के अन्धकार के कुछ नष्ट होने पर ज्योतिषी द्वारा बताई हुई दक्षिण दिशा में पृथ्वी पर संयत होकर राजा को पृथ्वी पर अगस्त्य मुनि के लिये अर्घ देना चाहिये।

ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैः नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणास्याम्।
सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत्॥

4.7.3 अर्घार्थ वस्तुवर्णन

अर्घदान का लक्षण ज्ञात होने के उपरान्त जिज्ञासा होगी की किन- किन वस्तुओं का प्रयोग अर्घ देने में करना चाहिए। इस विषय में आचार्य लिखते हैं कि शारदीय सुगन्धित पुष्प, फल, समुद्र से उत्पन्न रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु, वृष, पायस युत भोजन, द्रव्य, दधि,अक्षत, सुगन्धित धूप और चन्दन युत अर्घ देना चाहिये।

कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैशश्च रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च ।
धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यैर्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च॥

उपरोक्त वस्तुओं से सुसज्जित होकर अगस्त्य मुनि को अर्घ देना चाहिए।

4.7.4 अर्घदान फल

अर्घ दान का फल बताते हुये आचार्य कहते हैं कि यदि श्रद्धावान् राजा इस प्रकार अर्घ देने की विधि को धारण करे तो नीरोग होता है और शत्रुओं को जीतता है।यदि इस प्रकार सात वर्ष तक भक्ति पूर्वक अर्घ देता रहे तो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी (चक्रवर्ती राजा) होता है।

नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः।
भवति यदि च दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यग् जलनिधिरशनायाः स्वामितां यातिभूमेः॥

भावार्थ- श्रद्दधानः = श्रद्धावान्, नरपति = राजा, इमम् = इस प्रकार अर्थात् उपरोक्त विधि से,

अर्घम् = अर्घ, दधान: = देने का प्रयत्न करे तो, गद: = रोग, दोष: = दोष, प्रविगता: = नष्ट हो जाते हैं। तथा राति = शत्रु, पक्ष: = पक्ष को, निर्जित: = जीतता है। और यदि इस विधि से, सम्यक् = अविच्छिन्न रूप से, सप्त = सात, वर्षाणि = वर्षों तक, दद्यात् = देता रहे तो, जलनिधिरशनाया = समुद्र- पर्यन्त, भूमे: = भूमि का, स्वामिताम् = प्रभुता को, याति = प्राप्त करता है।

पुनः इसी प्रसङ्ग में आगे उल्लिखित है कि यदि अपनी शक्ति के अनुसार लब्ध वस्तु से अर्ध दे तो ब्राह्मण वेदों को, स्त्री पुत्रों को,वैश्य गौओं को एवं शूद्र बहुत धनों को प्राप्त करता है तथा ब्राह्मणादि सभी वर्ण रोग क्षय और धार्मिक फल को प्राप्त करते हैं।

द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान्।
वैश्यश्च गां भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे॥

भावार्थ- यदि यथालाभम् = यथा सम्भव = अपनी शक्ति के अनुसार उपलब्ध वस्तु से, उपाहृतार्घ: = दत्त अर्घ = अर्घ दे तो, द्विज: = ब्राह्मण, वेदान् = वेदों को, प्राप्नोति = प्राप्त करता है। तथा प्रमदाः= स्त्री, पुत्रान् = पुत्रों को, वैश्य: = वैश्य, यथालाभम् = यथा सम्भव,उपहृतार्घ: = अर्घ दे तो, गाम् = गायों को, लभते = प्राप्त करता है। शूद्र: = शूद्र भूरि = बहुत से , धनं = वित्त को प्राप्नोति = प्राप्त करता है। सर्वे = ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्र, रोगक्षयम् = रोग क्षय, च = और धर्मफलम् = धार्मिक फल को, प्राप्नुवन्ति = प्राप्त करते हैं।

4.8 अगस्त्य का वर्णानुसार लक्षण

विविध वर्णों का होकर यदि आकाश में दृष्टिगोचर हो तो उसका फल क्या होगा?

इसके विषय में बृहत्संहिता में उल्लिखित है कि यदि रजत या स्फटिक के समान अपने किरणों से पृथ्वी को तृप्त करते हुये अगस्त्य दिखाई तो पृथ्वी अधिक धान्य, निर्भीक तथा रोग रहित मनुष्यों से युत होती है।

शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणाग्रैः।
दृश्यते यदि तदा प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥

भावार्थ- शातकुम्भसदृश: = सुवर्ण और रजत के समान, या स्फटिकाभः = स्फटिक की कान्ति, महीं = भूमि को किरणाग्रैः = अपनी किरणों से तर्पयन्निव = तृप्त करते हुये दृश्यते = अगस्त्य दिखाई दे तो, तदा = तब, भू: = पृथ्वी,प्रचुरान्ना = प्रचुर मात्रा में अन्न तथा अभयरोगजनाढ्या = अभय और रोग रहित मनुष्यों से युक्त होती है।

इसी प्रसङ्ग में आगे कहते हैं कि यदि अगस्त्य रूक्ष हो तो रोग, कपिल वर्ण का हो तो अवृष्टि, धूम्र वर्ण का हो तो गौओं के लिये अनिष्ट फल, कम्पमान हो तो भय, लोहित वर्ण का हो तो दुर्भिक्ष और युद्ध तथा सूक्ष्म हो तो नगर का अवरोध करते हैं।

रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणोभयाय।
माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥

भावार्थ- यदि अगस्त्यनामा = अगस्त्य मुनि,परूष: = रूक्ष हो तो, रोगान् = रोग, करोति = करता है, कपिल: = कपिल वर्ण का हो तो, वृष्टिम् = वर्षा, करोति = करता है, धूम्रवर्ण: = धूम्र

वर्ण का हो तो, गवाम् = गायों को, अशुभकृत् = अनिष्ट करता है, स्फुरण: = कम्पमान हो तो, भयाय = भय करता है माजिष्ठरागसदृश: = लोहितवर्ण का हो तो, क्षुधम् = दुर्भिक्षम् = दुर्भिक्ष, च = और आहवान् = संग्राम, करोति = करता है। अणु: = सूक्ष्म हो तो, पुररोधम् नगरवेष्टनम् = नगर का अवरोध, करोति = करता है।

4.9 सारांश

अगस्त्य को विविध नामों से जानते हैं यथा -मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुम्भज और घटोद्भव। मित्रावरुण के पुत्र होने कारण इन्हें मैत्रावरुणि और सायण के अनुसार कुम्भज और घटोद्भव कहते हैं। अगस्त्य मुनि ने सूर्य का मार्ग रोक लिया था। बढ़ते हुये विंध्य पर्वत को रोका तथा वातापी राक्षस को खाकर पचा डाला था। इस प्रकार अगस्त्यचार का संक्षेप में अध्ययन आपने इस इकाई में किया। तदुपरान्त समुद्रशोभा का वर्णन किया गया है, जिसमें आपने अध्ययन किया कि किस प्रकार अगस्त्य ने मणि और रत्नों से युक्त जल के प्रवाहों से सागर को अत्यंत सुंदर बनाया। साथ ही इनके प्रभाव के कारण जल नष्ट होने पर भी शरद् ऋतु में जिस प्रकार सरोवर हंसों से युक्त होकर अपनी शोभा को धारण करता है ठीक उसी प्रकार समुद्र भी सुशोभित होता है। तत्पश्चात् विंध्य कि शोभा का वर्णन किया गया है। इस शीर्षक के अंतर्गत यह बताया गया है कि विंध्य पर्वत सूर्य का मार्ग अवरुध करने के लिए अपने शिखर को उन्नत और कंपायमान बना लेता है। विविध प्रकार के विद्याधरों से,पशु,पक्षियों और वृक्षों से अन्वित यह पर्वत रेवा नदी से भी युक्त है, जो अगस्त्य के प्रभाव से शोभायमान हो रहा है। इसके पश्चात् अगस्त्य के उदित होने पर उनके दर्शन से मनुष्यों को किस प्रकार का लाभ प्राप्त होता है ? आपने इसका भी अध्ययन किया। अगस्त्य के दर्शन से कलुषित हृदय वालों का हृदय निर्मल हो जाता है। शरद् ऋतु के वर्णन प्रसङ्ग में उसकी शोभा का विस्तृत विवेचन किया गया है। जिसकी उपमा मदनातुर स्त्री से की गई है। भूमि अनेक प्रकार के कमलों से अन्वित अपने हस्तों से अगस्त्य मुनि को अर्घ देती है। प्रस्तुत इकाई में अगस्त्य की प्रधानता को बताया गया है, जिसके अंतर्गत यह प्रतिपादित किया गया है कि अगस्त्य के प्रभाव से अहि के विष से दूषित जल भी शुद्ध हो जाता है तथा उनके नाम का स्मरण करने से व्यक्ति के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तदुपरान्त उनके उदय और अस्त की विधि को आपलोगों ने जाना। स्पष्ट सूर्य जब सिंह राशि के तेईस अंश पर होता है तो ये उदित होते हैं। उदित होने के उपरान्त ही इनको अर्घ देना चाहिए। अर्घदान के लिए अभीष्ट वस्तु का भी अध्ययन आपलोगों ने किया। अंत में विविध वर्णों यथा- सुवर्ण, रजत कपिल,लोहित और धूम्र, आदि का हो तो पृथ्वी अन्न से युक्त, अवृष्टि, आरोग्यता, निर्भीकता से युक्त होती है। इन समस्त विषयों का विशद् विवेचन इस इकाई में की गयी है, जिसका अध्ययन आपने किया।

4.10 शब्दावली

विद्याधर = देवयोनि विशेष।

शृंग = शिखर

अम्बर = वस्त्र

अम्बु = जल

रद = दाँत

पयोद = मेघ

अलि = भौरा

तडाग = सरोवर

राति = शत्रु

द्विज = ब्राह्मण

प्रमदा = स्त्री

4.11 बोध प्रश्न

1. अगस्त्य के उदयास्त लक्षण को विस्तार से प्रतिपादित कीजिए।
2. अगस्त्यचार पर विस्तृत निबन्ध लिखिए।
3. अगस्त्य के लिए अर्घदान लक्षण एवं अर्घ में प्रयुक्त होने वाले वस्तुओं का उल्लेख कीजिये।
4. अगस्त्य के प्रभावों को रेखांकित कीजिये।
5. वर्णों के अनुसार अगस्त्यचार के शुभाशुभ फल का वर्णन विस्तार से कीजिए।

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बृहत्संहिता,व्याख्याकार-पं. अच्युतानन्द झा,चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी 2014।
2. भारतीय ज्योतिष, मूल लेखक– शंकर बालकृष्ण दीक्षित, अनुवादक- झारखंडी शिवनाथ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990।
3. बृहत्संहिता, (भट्टोत्पल टीका सहित), सं. सं. वि. वि., वाराणसी, 1997।
4. वशिष्ठ संहिता, संपादक- प्रो. गिरिजा शङ्कर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2016।
5. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2014।

इकाई 5 सप्तर्षिचार

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सप्तर्षिचार : संक्षिप्त परिचय

5.2.1 वैदिक वाङ्मय के अनुसार नामावली

5.2.2 अर्वाचीन मत में सप्तर्षि का स्वरूप

5.3 सप्तर्षि का दिक्संस्थान लक्षण

5.4 सप्तर्षिचार द्वारा नक्षत्रानयन

5.5 सप्तर्षि का नक्षत्रभोगप्रमाणकाल और स्थिति

5.6 सप्तर्षि का संस्थान लक्षण

5.7 सप्तर्षि का स्ववर्ग एवं फल कथन

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्न

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- सप्तर्षि के संचरण को व्याख्यायित कर सकेंगे।
- सप्तर्षि के संचरण से नक्षत्र का आनयन करने में कुशल होंगे।
- सप्तर्षि द्वारा नक्षत्रभोग काल को बता सकेंगे।
- सप्तर्षि के स्ववर्ग को रेखांकित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- सप्तर्षि के संस्थान लक्षण को प्रतिपादित करने में कुशल होंगे।

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई सप्तर्षिचार से सम्बन्धित है। सप्तर्षि आकाश में सात तारों का समूह है, जो सात प्राचीन ऋषियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये तारामण्डल आकाश में ध्रुव के चारों ओर उत्तर दिशा में भ्रमण करते हुये दिखाई देते हैं। इस इकाई के माध्यम से आप इन सात तारों के चार से नक्षत्र का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही एक-एक नक्षत्र में सप्तर्षि कितने वर्षों का भोग करते हैं, आकाश में इनकी स्थिति क्या है ? किस दिशा में कौन-कौन से ऋषियों का क्रम है, इनकी आकृति कैसी है? और उल्कादि पिण्डों से ग्रस्त होने पर अपने-अपने वर्गों को किस प्रकार

प्रभावित करते हैं तथा अपने-अपने नाम के अनुसार उनके वर्ग में कौन-कौन आते हैं ? इत्यादि इन समस्त विषयों का अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे।

5.2 सप्तर्षिचार : संक्षिप्त परिचय

सप्तऋषि तारामण्डल पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध के आकाश मे रात्रि को दिखने वाला तारा समूह है। इसे फाल्गुन-चैत्र माह से श्रावण-भाद्र माह तक आकाश में सात तारों को एक समूह के रूप में देखा जा सकता है। इसमे चार तारें चौकोर और तीन तिरछी रेखा में रहते हैं। इन तारों को काल्पनिक रेखा से मिलाने पर एक प्रश्न चिन्ह का आकार प्रतीत होता है। प्राचीन भारतीय खगोल विज्ञान में **बिग डिपर** यानि **उर्स मेजर** नक्षत्र के हिस्से के तारांकन को सप्तऋषि कहा जाता है। जिसमें सात सितारें सात ऋषियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये क्रमशः क्रतु, पुलह, पुलस्य, अत्रि, अंगिरा या अंगिरस, वशिष्ठ और मारीचि है। इसे एक पतंग का आकार भी माना जा सकता है,जो कि आकाश में एक डोर के साथ उड़ रही हो। यदि आगे के दो तारों को जोड़ने वाली पंक्ति को आगे बढ़ाएं तो यह ध्रुव तारे पर पहुंचती है। दूसरी शताब्दी के खगोलविद टॉलमी के 48 तारामंडल की सूची में यह तारा समूह भी शामिल था। सप्तर्षि वैदिक क्षेत्र के सात महान् ऋषि हैं। उन्होंने अपनी तपस्या और योग शक्ति से एक अर्ध नश्वर स्थिति प्राप्त की है, जो बहुत लम्बी उम्र की है। सात पवित्र सन्तों को मानव जाति का मार्गदर्शन करने के लिए चार महान् युगों में उपस्थित रहने के लिए नियुक्त किया गया था। इन सात ऋषियों ने पृथ्वी पर संतुलन बनाये रखने के लिये भगवान् शिव के साथ मिलकर काम किया।ये सभी ब्रह्मर्षि हैं, जिसका अर्थ है कि वे ब्रह्म का अर्थ पूरी तरह समझ चुके हैं। आमतौर पर, कोई केवल योग्यता द्वारा ब्रह्मर्षि के स्तर तक नही बढ़ सकता, यह दैवीय आदेश से बनाया गया और भगवान् ब्रह्मा द्वारा नियुक्त किये गये हैं। तथापि केवल विश्वामित्र अपनी योग्यता से ही ब्रह्मर्षि पद तक पहुंचे। विश्वामित्र ने हजारों वर्षों तक तपस्या और ध्यान किया और परिणामस्वरूप, उन्हे स्वयं ब्रह्मा ने ब्रह्मर्षि पद से सम्मानित किया।

ऋषियों के अन्य वर्गीकरण में महर्षि और राजर्षि हैं। सप्तऋषि मण्डल ध्रुव तारे के चारों ओर 24 घण्टे में एक चक्कर लगाता है। इस मण्डल के दो तारे सदैव ध्रुव तारे की सीध में ही दिखाई देते हैं। पुलह और क्रतु तारे की बीच की दूरी के पांच गुणा दूरी पर ध्रुव तारा स्थित है। प्राचीन समय में जब दिशा ज्ञान का यन्त्र नहीं था तब ध्रुव तारे से ही उत्तर दिशा का ज्ञान किया जाता था। कई प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में सप्तऋषि के परिभ्रमण का उल्लेख मिलता है। यह माना जाता है कि सप्तऋषि या बिग बियर नक्षत्र एक नक्षत्र में लगभग 100 वर्षों तक रहते हैं। 8000 ईसा पूर्व से सप्तऋषि पाँच अलग-अलग नक्षत्रों का भ्रमण कर चुके हैं। सप्तऋषि के 27 नक्षत्रों के परिभ्रमण का उल्लेख भारतीय खगोल और ज्योतिष के साथ कालक्रम ग्रन्थ बृहत्संहिता, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण आदि में मिलता है। युधिष्ठिर के शासनकाल या परीक्षित के राज्यारोहण या कृष्ण की मृत्यु के समय या कलियुग प्रवेश के समय सप्तऋषि सिंह राशि और मघा नक्षत्र (Regulus) में थे। उत्तरी ध्रुव तारा उत्तर में दृश्य है। यह हमेशा उत्तरी ध्रुव मे दिखाई देता है। ध्रुव को केंद्र मानते हुए आकाश में चार काल में सप्तऋषियों की चार स्थितियाँ निर्मित होती है। यह बसंत ऋतु में पीठ के बल दाहिनी ओर लेटा हुआ प्रश्न चिन्ह की आकृति में उत्तर की ओर दिखाई देता है। शीत या शिशिर ऋतु में खड़ा हुआ प्रश्न चिह्न की आकृति में पूर्व में दिखाई देता है। शरद् या पतझड़ ऋतु मे बाँयी ओर पीठ के बल लेटा हुआ प्रश्न चिन्ह की आकृति में दक्षिण दिशा में दिखाई देता है। ग्रीष्म

ऋतु में शीर्षासन अवस्था में उल्टा प्रश्न चिह्न की आकृति में पश्चिम दिशा में दिखाई देता है। जब हम चारों ओर प्रश्न चिह्नों को एक साथ देखते हैं तो हमारे सामने एक विशेष आकृति बनती दिखाई देती है और ये है हमारा स्वस्तिक की आकृति है, जो ज्यामितीय आकृति है।

5.2.1 वैदिक वाङ्मय के अनुसार नामावली

हिन्दू धर्म के विष्णु पुराण के अनुसार कृतज्ञ त्रैलोक्य भू: , भुव: , स्व: ये तीनों मिलकर कृतज्ञ त्रैलोक्य कहलाते हैं। सप्त ऋषि मण्डल शनि मण्डल से एक लाख योजन ऊपर का मण्डल है। सप्त ऋषि मण्डल का नाम सात ऋषि मरीचि, वशिष्ठ, अंगिरस, अत्रि, पुलस्य, पुलह और क्रतु के नाम पर रखा गया है। सप्तर्षि (सप्त +ऋषि) सात ऋषियों को कहते हैं। जिनका उल्लेख वेदों और हिन्दू ग्रंथों में अनेक बार हुआ है। इनकी नामावली अलग-अलग ग्रंथो में भिन्न-भिन्न है।

वेदों का अध्ययन करने पर जिन सात ऋषियों या ऋषि कुल के नामों का पता चलता है, ये नाम क्रमशः इस प्रकार है :- 1. वशिष्ठ, 2. विश्वामित्र, 3. कण्व,4.भारद्वाज, 5. अत्रि, 6. वामदेव और 7. शौनक ये सप्त ऋषि या सप्तर्षि कहलाते हैं।

पुराणों में सप्त ऋषि के नाम पर भिन्न-भिन्न नामावली मिलती है। विष्णु पुराण के अनुसार इस सातवें वैवस्तवत मन्वन्तर (कुल 14 मन्वन्तर होते हैं) के सप्तऋषि इस प्रकार हैं :- 1. वशिष्ठ 2. कश्यप 3. अत्रि 4. जमदग्नि 5. गौतम 6. विश्वामित्र और 7. भारद्वाज।

बृहदारण्यक उपनिषद् (2.2.6) में अत्रि, भारद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, वशिष्ठ और विश्वामित्र है।

गोपथ ब्राह्मण (1.2.8) में वशिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, गौतम, भारद्वाज, भृगु, अगस्त्य और कश्यप है।

इसके आलावा पुराणों में अन्य नामावली क्रतु, पुलह, पुलस्य, अत्रि, अंगिरा, वशिष्ठ और मरीचि है। महाभारत में सप्तऋषियों की दो नामावली मिलती है। एक नामावली में कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वशिष्ठ के नाम आते हैं तो दूसरी नामावली में पाँच नाम बदल जाते हैं कश्यप और वशिष्ठ वही रहते हैं परन्तु अन्य के स्थान पर मारीचि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु नाम आते हैं। कुछ पुराणों में कश्यप और मारीचि को एक माना है तो कहीं कश्यप और कण्व को पर्यायवाची माना है।

5.2.2 अर्वाचीन मत में सप्तर्षि का स्वरूप

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सप्त ऋषि तारा मण्डल में कई गैलेक्सियाँ भी पायी गई हैं। इनमें मंसिये 81 नामक सर्पिल गैलेक्सी भी है, जो आकाश में सबसे रोशन गैलेक्सीयों मे से एक है। इसी तारा मण्डल के क्षेत्र में मंसिये 82 नामक गैलेक्सी भी है जिसे अपने आकार की वजह से सिगार गैलेक्सी भी कहा जाता है। यहाँ हमसे 2.5 प्रकाश करोड़ वर्ष दूर स्थित चकरी गैलेक्सी भी है, जिसे पिनव्हील गैलेक्सी भी कहते हैं। कुल सप्त ऋषि तारामण्डल में लगभग 50 गैलेक्सियाँ देखी जा चुकी हैं। कुल मिलाकार सप्तऋषि तारामण्डल में 93 तारों को बायर नाम दिए जा चुके हैं। जिनमें 13 इर्द-गिर्द गैर सौरीय ग्रह परिक्रमा करते हुए पाये गये हैं। अंग्रेजी में सप्त ऋषि तारामण्डल को **उर्स मेजर** या **ग्रेट बियर** या **बिग बियर** कहा जाता है। इन सबका अर्थ बड़ा भालू होता है। अमेरिका और कनाडा में इसे बिग डिपर यानि

बड़ा करछा कहते हैं। चीन में इसे पे-ताऊ कहते हैं।

ध्रुव, सप्तऋषि मण्डल

5.3 सप्तर्षि का दिक्संस्थान लक्षण

बृहत्संहिता के सप्तर्षिचाराध्याय में आचार्य वराहमिहिर ने सप्तर्षियों की दिशा का उल्लेख सर्वप्रथम किया है। जिसके अंतर्गत दिशा विशेष को विशेषणों से अलंकृत किया है। ये सप्तर्षि उत्तर दिशा के स्वामी के रूप में शोभित होते हैं। नायिका के रूप में उत्तर दिशा की संज्ञा देते हुये आचार्य लिखते हैं कि आभूषण से सुशोभित, श्वेत कमल माला से विभूषित, मुस्कान से युत और अपने स्वामियों जो सात मुनियों के रूप में विद्यमान हैं, तत्सहित कामिनी की तरह उत्तर दिशा सुशोभित है। जैसे-

सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव।
नाथवतीव च दिग् यैः कौवेरी सप्तभिर्मुनिभिः॥ बृ.सं.,13/1

भावार्थ- यैः सप्तभिः मुनिभिः = जो सात मुनियों से, कौवेरी = उत्तर दिशा, च = और, नाथवती = स्वामी से युक्त नायिका,इव = जिस प्रकार, विराजते = सुशोभित होती है, तथैव = उसी प्रकार शोभित है। नाथवती किदृशी ? नाथवती कैसी है ? सैकावलीव = आभरण युक्त के समान, ससितोत्पलमालिनी = श्वेत कमल के माला से युत, सहासेव = मुस्कान युत है।

तदुपरान्त आचार्य कहते हैं कि इन सप्तर्षियों का नायक ध्रुव तारा है । जिसके उपदेश पर भ्रमणशील सप्तर्षियों से युत उत्तर दिशा मानो बारम्बार नृत्य करती है। जिस प्रकार नर्तकी का उपदेश करने वाला नायक आचार्य के रूप में होता है, ठीक उसी प्रकार उनके नायक ध्रुव तारा है। जिससे सकल ज्योतिश्चक्र का ध्रुव ही भ्रामक है। यथा –

"ध्रुवनायकोपदेशान्ननरिनर्तीवोत्तर भ्रमद्भिश्च"

5.4 सप्तर्षिचार द्वारा नक्षत्रानयन

सप्तर्षियों के संचरण से नक्षत्र का ज्ञान करने की विधि आचार्य वराहमिहिर ने स्वसंहिता ग्रंथ में प्रतिपादित की है। आचार्य ने सप्त मुनियों के चार को गर्ग ऋषि के मतानुसार वर्णित किया है। गर्ग के अनुसार जब पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर धर्म में निरत होकर प्रजाओं का पालन करते हुये

पृथ्वी पर शासन कर रहे थे तब उस समय में सप्तर्षि मघा नक्षत्र में स्थित थे ।यह काल कलियुग और द्वापर का संधि काल था। यथा-

कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदैवतम् ।
मुनयो धर्मनिरता: प्रजानां पालने रता ।।

इस प्रसङ्ग में आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं –

आसन् मघासु मुनय: शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुत: शककालतस्य राज्ञश्च ।। बृ.सं.,13/2

जिसका आशय है कि इष्ट शकाब्द में 2526 युक्त करने से राजा युधिष्ठिर का गताब्द काल होता है। ऐसा करने से जो होता है वह वर्षसमूह का वर्तमान काल तक का गत मान होता है। और इस योगफल में सौ का भाग करने पर जो लब्धि प्राप्त होती है, वह उन नक्षत्रों में मघा से भुक्त नक्षत्र होगा और जो शेष प्राप्त होगा, वह भोग्य नक्षत्र का गत वर्ष प्राप्त होगा। और इस गत मान को सौ में विशोधित करने पर जो फल प्राप्त होगा,वह भोग्य वर्ष होता है तथा इतने ही वर्षों तक उस वर्तमान नक्षत्र पर सप्तर्षि स्थित होते हैं, ऐसा जानना चाहिए। आइये इस प्रसङ्ग को उदाहरण द्वारा समझते हैं- एक नक्षत्र में सप्तर्षि सौ वर्षों तक रहते हैं, अतः पूर्वोक्त श्लोकनुसार 2526 में इष्ट शकाब्द को जोड़ते हैं।

मान लिया जाए कि इष्ट शकाब्द है = 1875,
अब इसे 2526 में जोड़ेंगे तो –

$$2526 + 1875 = 4401$$

पुनः इसमें 100 का भाग देने पर,

$$4401 \div 100 = \text{लब्धि } 44 \text{ और शेष } 1$$

मघा नक्षत्र से गिनने पर 17 वाँ नक्षत्र उत्तरभाद्रपद होता है, अतः प्राप्त लब्धि के अनुसार इष्ट शकाब्द में गत नक्षत्र उत्तरभाद्रपद है तथा वर्तमान नक्षत्र रेवती है। शेष के हिसाब से रेवती का1 वर्ष भुक्त और सौ में एक घटाने पर शेष 99 बचता है, अतः 99 वर्ष भोग्य हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि शक 1875 में रेवती नक्षत्र पर सप्तर्षि 99 वर्षों तक रहे थे। इसी प्रकार प्रत्येक शकाब्द में उन सात मुनियों का नक्षत्र ज्ञान कर सकते हैं। इसके बाद प्रत्येक नक्षत्रों में सप्तर्षि का वर्ष प्रमाण और नक्षत्रों की स्थिति को आचार्यों ने प्रतिपादित किया है।

5.5 सप्तर्षि का नक्षत्रभोगप्रमाण काल और स्थिति

पूर्वोक्त प्रकरण के उदाहरण वाले भाग में यह उल्लिखित है कि एक नक्षत्र में सप्तर्षि सौ वर्षों तक स्थित रहते हैं, परंतु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया गया। इस प्रसंग में हम यहाँ पर प्रमाण सहित प्रत्येक नक्षत्रों में सप्तर्षियों के वर्षावस्थिति को जानेंगे। आचार्य कश्यप का मत है कि वे सप्त मुनि एक-एक नक्षत्रों में सौ-सौ वर्षों तक स्थित रहते हैं। यही मत आचार्य वराहमिहिर का भी है। यथा –

एकैकस्मिन्नृकक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणां ।
प्रागुदयतोऽप्यविवरादृजुन्नयति तत्र संयुक्ता ।। बृ.सं.,13/4

इसका आशय इस प्रकार है, एक-एक नक्षत्रों में सौ-सौ वर्षों तक सप्तर्षि रहते हैं। जिस नक्षत्र के पूर्व दिशा में उदित होने पर आकाश में सप्तर्षि-मण्डल स्पष्ट दिखाई दे, उसी नक्षत्र में उन सात ऋषियों कि स्थिति समझनी चाहिए ।कुछ आचार्यों के मत में "प्रागुत्तरश्चैते सदोदयन्ते ससाध्वीका:" ऐसा पाठ होने पर ईशान कोण में हमेशा साध्वी अरुन्धती के साथ वे उदित होते हैं- ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

5.6 सप्तर्षि का संस्थान लक्षण

आचार्य वराहमिहिर ने सप्तर्षियों के आकाशीय सम्यक् स्थिति को वर्णित करते हुये लिखते हैं कि प्राच्य दिशा में भगवान् मरीचि नाम के महर्षि का स्थान है। उनसे पश्चिम दिशा में वसिष्ठ नाम के महर्षि स्थित हैं। और वसिष्ठ से पश्चिम में अङ्गिरा ऋषि का स्थान है। अङ्गिरा ऋषि के पश्चात् अत्रि ऋषि का स्थान है। अत्रि ऋषि के समीप पुलस्त्य नाम के ऋषि स्थित हैं। पुलस्त्य ऋषि के बाद पुलह ऋषि का स्थान है। और अन्त में पुलह ऋषि के उपरान्त क्रतु ऋषि स्थित हैं। इस प्रकार पूर्व दिशा से प्रारंभ कर क्रम से सप्तर्षियों कि आकाश में स्थिति रहती है और इनके मध्य में भगवती अरुन्धती वसिष्ठ के आश्रित हैं। यथा –

पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात्।
तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्च ।।

पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्ना अनुक्रमेण पूर्वाद्यात् ।
तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी ।। बृ.सं.,11/5,6

भावार्थ- पूर्वे भागे = पूर्व दिशा में, भगवान् मरीचिः = महर्षि मरीचि स्थित हैं। अस्मात् = उनसे अर्थात् मरीचि से, अपरे = पश्चिम दिशा में, वसिष्ठः = वसिष्ठ ऋषि, तस्य = वसिष्ठ के पश्चिम भाग में, अङ्गिराः = अङ्गिरा ऋषि, ततः = अङ्गिरा के बाद, अत्रिः = अत्रि ऋषि, तस्य = अत्रि के, आसन्नः = समीप, पुलस्त्यः = पुलस्त्य ऋषि, ततः = पुलस्त्य के बाद, पुलहः = पुलह ऋषि, च = और, ततः = इनके बाद, क्रतुः = भगवान क्रतु स्थित हैं। अनुक्रमेण = पूर्वापर क्रम से ये, आसन्नाः = समीप में स्थित हैं। तत्र च = और उनके मध्य में, साध्वी अरुन्धती = साध्वी अरुन्धती, मुनिवरम् = मुनि श्रेष्ठ, वसिष्ठम् = वसिष्ठ के, आश्रिता = आश्रित हैं।

5.7 सप्तर्षि का स्ववर्ग एवं फल कथन

सप्त ऋषियों के स्ववर्ग को प्रतिपादित करते हुये आचार्य लिखते हैं कि, भगवान् मरीचि के स्ववर्ग क्षेत्र के अंतर्गत गन्धर्व, देव, राक्षस, मंत्र, औषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधर आते हैं। वसिष्ठ ऋषि के स्ववर्ग में शाक, यवन, दरद, पारत, कम्बोज, तपस्वी और वनवासी आते हैं। अङ्गिरा के स्ववर्ग में ज्ञानी, बुद्धिमान् और ब्राह्मण वर्ग के लोग आते हैं। अत्रि मुनि के स्ववर्ग क्षेत्र में वन, जल में उत्पन्न होने वाले द्रव्य, समुद्र और नदियाँ आते हैं। पुलस्त्य मुनि के वर्ग क्षेत्र में राक्षस, पिशाच, दानव, दैत्य और सर्प आते हैं। पुलह ऋषि के स्ववर्ग में फल और मूल आते हैं। अंत में क्रतु मुनि के स्ववर्ग में यज्ञ और यज्ञकर्ता आते हैं। वर्ग कहने के बाद क्रम से इन मुनियों के आकाशीय स्थिति के अनुसार उनके प्रभावों का भी वर्णन आचार्य ने किया है। उल्का, व्रज, या धूम आदि से आहत, विवर्ण, ज्योतिरहित या स्वल्प बिम्ब वाला सप्तर्षि

मण्डल हो तो अपने-अपने वर्ग का नाश करते हैं तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हो तो अपने वर्ग की वृद्धि करता है। जिसका आशय है कि – यदि मरीचि उल्कादि से प्रभावित हों तो अपने वर्गक्षेत्र में आने वालों-गन्धर्व,देव, राक्षस, मंत्र, औषधि आदि को पीड़ित करते हैं और निर्मल और विपुल होने पर उनकी वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार वसिष्ठ उल्कादि से प्रभावित हों तो स्ववर्ग क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले लोगों का नाश करते हैं तथा किरणों से सम्पन्न हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अङ्गिरा उल्कादि से प्रभावित हों तो स्ववर्ग में कथित जनों को पीड़ित करते हैं तथा विपुल और निर्मल बिम्ब वाला हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। यदि अत्रि उल्कादि से पीड़ित हों तो अपने वर्ग का नाश तथा विपुल और स्निग्ध कान्ति वाला हों तो उनकी वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार अन्य मुनियों का फल जानना चाहिए। यथा–

गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागनाम्।
पीडाकारो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च॥

शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान् वनोपेतान्।
हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसम्पन्नः॥

अङ्गिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः।
अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः॥

रक्षः पिशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य।
पुलहस्य तू मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः॥ बृ.सं.,11/8-11

5.8 सारांश

सप्तर्षि का अर्थ है- सात ऋषियों का समूह। जो आकाश में तारामंडल के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः ये तारामंडल हमारी पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में रात्री को दिखाई देने वाला तारा समूह है। जिसमें सात तारे सात महर्षियों का आकाश में प्रतिनिधित्व करते हैं। सात ऋषियों की नामावली वैदिक वाङ्मय में भिन्न-भिन्न प्राप्त होती है। बृहत्संहिता ग्रन्थ के अनुसार ये क्रमशः मरीचि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु हैं। इन सप्त मुनियों से युत उत्तर दिशा नायिका के सदृश शोभायमान होती है। ध्रुव तारा को उपदेशक मानकर उसके चारों ओर ये भ्रमण करते हैं। सप्तर्षियों के संचरण द्वारा नक्षत्र ज्ञान की विधि उदाहरण के माध्यम से प्रतिपादित किया गया। कलियुग और द्वापर के संधि काल में ये मघा नक्षत्र पर थे। एक–एक नक्षत्र पर सौ-सौ वर्ष तक ये सप्तर्षि स्थित रहते हैं। पूर्व दिशा में जिस नक्षत्र के उदित होने के उपरांत ये दिखाई पड़ते हैं, उसी नक्षत्र में इनकी स्थिति होती है। इन समस्त विषयों का अध्ययन आपने इस इकाई में किया। तदुपरान्त सप्तर्षियों के संस्थान लक्षण का अध्ययन किया। जिसमें यह बताया कि पूर्व दिशा में मरीचि, उनके उपरान्त वसिष्ठ, तत्पश्चात् अङ्गिरा, उनके बाद अत्रि इत्यादि सातों मुनियों के आकाशीय क्रम को जाना। इसके बाद सप्तर्षियों के वर्ग क्षेत्र को स्पष्ट किया गया है। आकाशीय स्थिति के अनुसार ये सप्ततारों का मंडल यदि उल्कादि पिंड से आहत होते हों, अल्प बिम्ब वाले हों तो अपने वर्ग के अन्तर्गत आने वाले को पीड़ित करते हैं। यदि स्वच्छ और निर्मल बिम्ब का होकर ये आकाश में दिखाई पड़े तो अपने-अपने वर्ग की अभिवृद्धि करते हैं।

5.9 शब्दावली

कौवेरी - उत्तर दिशा।

विवर्ण - कलुषित ।

गन्धर्व - गन्धर्व स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की प्रजाति है।

यक्ष - एक अर्ध देव योनि जिसका उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है।

विद्याधर - देवविशेष योनि। भगवान् शिव के सहचर।

स्निग्ध - चिकना।

विमल - निर्मल, स्वच्छ, पारदर्शक।

5.10 बोधप्रश्न

1. सप्तर्षियों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. सप्तर्षियों के चार से नक्षत्र ज्ञान की विधि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. सप्त मुनियों के नक्षत्रभोगकाल एवं नक्षत्रानुसार उनकी स्थिति की व्याख्या करें।
4. सप्तर्षियों की आकाशीय स्थिति की समीक्षा कीजिए।
5. सप्तर्षियों के स्ववर्ग को रेखांकित कर उनके शुभाशुभ फल को प्रकाशित कीजिए।

5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बृहत्संहिता,व्याख्याकार-पं. अच्युतानन्द झा,चौखम्भा विद्याभवन,वाराणसी2014।
2. भारतीय ज्योतिष, मूल लेखक– शंकर बालकृष्ण दीक्षित, अनुवादक- झारखंडी शिवनाथ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990।
3. बृहत्संहिता, (भट्टोत्पल टीका सहित), सं. सं. वि. वि., वाराणसी, 1997।
4. वशिष्ठ संहिता, संपादक- प्रो. गिरिजा शङ्कर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2016।
5. भारतीय ज्योतिष, नेमिचन्द शास्त्री,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, 2014।